वार्षिक रु. १००, मूल्य रु. १२
विवेक ज्योति
वर्ष ५६ अंक ४ अप्रैल २०१८
रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम
रायपुर (छ.ग.)
RAMAKRISHNA MISSION,KADAPA

।। आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च।।

विवेक-ज्योति

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा से अनुप्राणित

हिन्दी मासिक

अप्रैल २०१८

प्रबन्ध सम्पादक
स्वामी सत्यरूपानन्द

सम्पादक
स्वामी प्रपत्त्यानन्द

सह-सम्पादक
स्वामी मेधजानन्द

व्यवस्थापक
स्वामी स्थिरानन्द

वर्ष ५६
अंक ४

वार्षिक १००/– **एक प्रति १२/–**

५ वर्षों के लिये – रु. ४६०/–
१० वर्षों के लिए – रु. ९००/–
(सदस्यता-शुल्क की राशि इलेक्ट्रॉनिक मनिआर्डर से भेजें अथवा **ऐट पार** चेक – 'रामकृष्ण मिशन' (रायपुर, छत्तीसगढ़) के नाम बनवाएँ
अथवा निम्नलिखित खाते में सीधे जमा कराएँ :
सेन्ट्रल बैंक ऑफ इन्डिया, **अकाउन्ट नम्बर** : 1385116124
IFSC CODE : CBIN0280804
कृपया इसकी सूचना हमें तुरन्त केवल ई-मेल, फोन, एस.एम.एस., व्हाट्सएप अथवा स्कैन द्वारा ही अपना नाम, पूरा पता, **पिन कोड** एवं फोन नम्बर के साथ भेजें।
विदेशों में – वार्षिक ३० यू. एस. डॉलर;
५ वर्षों के लिए १२५ यू. एस. डॉलर (हवाई डाक से)
संस्थाओं के लिये –
वार्षिक १४०/– ; ५ वर्षों के लिये – रु. ६५०/–

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम,
रायपुर – ४९२००१ (छ.ग.)
विवेक-ज्योति दूरभाष : ०९८२७१ ९७५३५
ई-मेल : vivekjyotirkmraipur@gmail.com
वेबसाइट : www.rkmraipur.org
आश्रम : ०७७१ – २२२५२६९, ४०३६९५९
(समय : ८.३० से ११.३० और ३ से ६ बजे तक)
रविवार एवं अन्य अवकाश को छोड़कर

अनुक्रमणिका

विवेक ज्योति के अंक ऑनलाइन पढ़ें : www.rkmraipur.org

अप्रैल माह के जयन्ती और त्योहार

१२ वल्लभाचार्य
२० शंकराचार्य, सूरदास
३० भगवान बुद्ध

आवरण-पृष्ठ के सम्बन्ध में

भगवान श्रीरामकृष्ण देव का यह भव्य मन्दिर रामकृष्ण मठ, कड़प्पा (आन्ध्र प्रदेश) का है।

विवेक-ज्योति स्थायी कोष

दान दाता	दान-राशि
श्री बी.एल. सोनेकर, आर.एस.यू., रायपुर (छ.ग.)	११११/-
श्रीमती गीता देवांगन, कुशालपुर, रायपुर (छ.ग.)	२००१/-

क्रमांक विवेक ज्योति पुस्तकालय योजना के सहयोग कर्ता	प्राप्त-कर्ता (पुस्तकालय/संस्थान)
४३६. श्री अनुराग,स्व.श्रीरामराज, स्व.श्रीमती उषा प्रसाद, कोलकाता	गवर्नमेंट कॉलेज ऑफ नर्सिंग, जे.एल.एन मार्ग,जयपुर (राज.)
४३७. ’’ ’’	शासकीय बिलासा कन्या महाविद्यालय, बिलासपुर (छ.ग.)
४३८. ’’ ’’	जवाहर लाल नेहरू कॉलेज, पो. बोको, जि.-कामरूप (असम)
४३९. ’’ ’’	पं. एस.एन. शुक्ला शासकीय कॉलेज, शहडोल (म.प्र.)
४४०. ’’ ’’	गवर्नमेंट कॉलेज, पैलेस रोड, सिरोही (राज.)
४४१. ’’ ’’	राजीव गांधी शा. पी.जी. महाविद्यालय, अंबिकापुर (छ.ग.)
४४२. ’’ ’’	गवर्नमेंट रामानन्द संस्कृत कॉलेज, लालघाटी, भोपाल (म.प्र.)
४४३. श्रीमती मीरा लाहिड़ी,द्वारा ए.के.लाहिड़ी बैंगलूरू (कर्नाटक)	स्व. देवी प्रसाद चौबे शा. महाविद्यालय, गंडई, (छ.ग.)
४४४. श्री नुनिया राम मास्टर, चंडीगढ़	दयानन्द कॉलेज, हिसार (हरयाणा)
४४५. ’’ ’’	पंजाब इंस्टीट्यूट ऑफ टेक्सटाईल टेक्नोलॉजी, अमृतसर
४४६. ’’ ’’	डिस्ट्रीक्ट इंस्टीट्यूट ऑफ एजुकेशन एंड ट्रेनिंग, माछरौली
४४७. ’’ ’’	घुबाया कॉलेज ऑफ इंजीनियरिंग एंड टेक्नोलॉजी,सुखेराबोडला
४४८. श्री राजकुमार अवस्थी, फाफाडीह, रायपुर (छ.ग.)	आशीर्वाद इंग्लिश स्कूल, बैरन बाजार, रायपुर (छ.ग.)
४४९. डॉ. विपिन बिहारी शुक्ला, देवरिया (उ.प्र.)	विद्याधर्म संजीवन संस्कृत महाविद्यालय, देवरिया (उ.प्र.)
४५०. एफसीए राजेन्द्र प्रसाद मोदी, कोलकाता (प.बं.)	लाइब्रेरियन, इंस्टीट्यूट ऑफ चार्टर्ड एकाउंटेंट, कोलकाता
४५१. श्री राम शरण गौराहा, ब्राह्मण पारा, रायपुर (छ.ग.)	कृष्णा पब्लिक स्कूल, सरोना, रायपुर (छ.ग.)
४५२. श्रीमती सुनन्दा भक्ता, कोलकाता (पं.बं.)	शिशु निकेतन इंग्लिश मिडियम हायर सेकंडरी स्कूल, रायपुर
४५३. श्री आशीष कुमार बॅनर्जी, शंकरनगर, रायपुर (छ.ग.)	विवेकानन्द केन्द्र, दीनदयाल उपाध्याय नगर, रायपुर (छ.ग.)
४५४. श्री मानक लाल कौरव, गाडरवारा, जि.नरसिंहपुर (म.प्र.)	माधव वाचनालय, सरस्वती शिशु विद्या मंदिर, कामती (म.प्र.)
४५५. श्री अनुराग,स्व.श्रीरामराज, स्व.श्रीमती उषा प्रसाद, कोलकाता	गवर्नमेंट कॉलेज ऑफ नर्सिंग, जोधपुर (राजस्थान)
४५६. ’’ ’’	शासकीय रेवतीरमण मिश्र महाविद्यालय, सूरजपुर (छ.ग.)
४५७. ’’ ’’	गवर्नमेंट एस.के. कॉलेज, मऊगंज, रीवा (म.प्र.)

।। आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च।।

विवेक-ज्योति

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा से अनुप्राणित

हिन्दी मासिक

वर्ष ५६ अप्रैल २०१८ अंक ४

श्रीरामकृष्ण-प्रातःस्मरणस्तोत्रम्

प्रातः स्मरामि जगतो भव-भाव-हेतुं
हेतुं लयस्य च भवाम्बुधि-पार-सेतुम्।
लीला-विलास-विलसद्-वपुषं सुधीशं
श्रीरामकृष्णमवतारवरं तमीशम्।।

प्रातर्नमामि कलिदोष-विदाहदक्षं
चानन्द-कन्दमरविन्द-दलायताक्षम्।
यः काम-काञ्चनमहोतनु-वाङ्मनोभि
रेजे विहाय भुवि संयत-वाक् सदाभीः।।

प्रातर्भजामि भजतां भव-भारहारं
पापौघहं करुणया धृत-देह-भारम्।
योगीश्वरं परमहंसवरं प्रशान्त-
म्मूर्द्धारविन्द-मकरन्द-मधुव्रतं तम्।।

– जो जगत की उत्पत्ति-पालन और प्रलय के कारण हैं, भवसागर-पार हेतु सेतु हैं, लीला हेतु शरीर-धारण किये हैं, वे ही विद्वद्वर श्रीरामकृष्ण परमहंस देव हैं, जो कलिदोष-नाश में कुशल, आनन्द-स्रोत हैं, पद्मपलाश के समान नेत्रों वाले जो मन-वाणी-कर्म से काम-कांचन त्यागी, संयमित वाणी और निर्भय हैं, जो शरणागत के मुक्तिदाता, पापनाशक, योगीश्वर, प्रशान्त, परमहंसश्रेष्ठ, संसारचक्र से ऊपर, ऊर्ध्वरेता और भगवद्भक्ति-मकरन्द का पान करनेवाले हैं, उन्हें शुभ प्रभात में स्मरण करता हूँ।

पुरखों की थाती

दुर्जन-दूषित-मनसां सुजनेष्वपि नास्ति विश्वासः ।
पाणौ पायसदग्धे तक्रं फूत्कृत्य पामरः पिबति ।।५९३।।

– जिनका हृदय दुष्टों के आचरण से सन्तप्त हो गया है, वे सज्जनों के आचरण पर भी विश्वास नहीं करते, क्योंकि दूध का जला हुआ गँवार दही भी फूँक-फूँककर पीता है ।

आपदि मित्रपरीक्षा शूरपरीक्षा रणाङ्गणे भवति ।
विनये वंशपरीक्षा शीलपरीक्षा धनक्षये भवति ।।५९४।।

– विपत्ति के समय मित्र की परीक्षा होती है, रणक्षेत्र में वीर की परीक्षा होती है, विनयशीलता से वंश का परिचय मिलता है और निर्धनता आ जाने पर व्यक्ति के शील की परीक्षा होती है ।

यथा ह्येकेन चक्रेण न रथस्य गतिर्भवेत्।
एवं पुरुषकारेण विना दैवं न सिध्यति।।५९५।।

– जैसे केवल एक ही चक्का हो, तो रथ आगे नहीं बढ़ सकता, वैसे ही पुरुषार्थ के बिना भाग्य नहीं फलता ।

यथा काष्ठं च काष्ठं च समेयातां महोदधौ।
समेत्य च व्यपेयातां तद्वत् भूतसमागमः।।५९६।।

– जैसे समुद्र में बहता हुआ काठ का एक टुकड़ा दूसरे टुकड़े से आकर मिल जाता है और फिर बिछुड़ भी जाता है, उसी प्रकार प्राणियों का आपस में मिलना तथा बिछुड़ना भी है ।

विविध भजन

नर्मदे ! कर दे बेड़ा पार

है तेरा आधार नर्मदे ! है तेरा आधार।।
मूर्ति मनोहर मंगलकारी, नीलाम्बर है मगर सवारी।
रूप-अनूप भव-भयहारी, महिमा अमित अपार।।

शम्भुलोक से धारा आई, मेकल पर्वत तीर्थ बनाई।
अमरकंठ किरती जग छाई, होवे जयजयकार।।

रेवाकुंड की शोभा न्यारी, जहाँ स्नान करे नर-नारी।
छटा अनूठी निर्मल वारि, चहुँ दिशि फाटक द्वार।।

पूरब बगिया बनी सुहावन, मार्कंड आश्रम अति पावन।
सोनभद्र धारा मनभावन, गिरती फोड़ पहाड़।।

कपिल धार की है छबि न्यारी, दूधधार निर्जन भयकारी।
बड़े-बड़े गिरि दुर्गम भारी, तिन को दिये बिदार।।

धार नर्मदा पश्चिम धाई, उत्तर सोनभद्र प्रभु भाई।
दोनों शिवगंगा पद पाई, दिया पातकिन तार।।

सुमिरन से मैया दुख हरती, दरशन से पातक संहरती,
मज्जन से मिलती है मुक्ति, पाप होय सब छार।।

शंकर तुम्हें महावर दीन्हें, तुम कंकर शंकर सम कीन्हें।
भक्तन को निज सेवन से, किया जगत उद्धार।।

मातु नर्मदे तुम्हें मनाऊँ, तुम्हरी कृपा विमल मति पाऊँ।
शिव सरिते ! तेरे गुन गाऊँ, कर दे बेड़ा पार।।
नर्मदे ! है तेरा आधार ...।।

कृपानिधि कृपा की नजर चाहता हूँ

स्वामी राजेश्वरानन्द सरस्वती

जमीं चाहता हूँ, नजर चाहता हूँ।
कृपानिधि कृपा की नजर चाहता हूँ।।
बहा दे जो जीवन के दुख-दर्द सारे,
सहज प्रेम की वो लहर चाहता हूँ।।
कृपानिध कृपा की ...
प्रभु तेरी पूजा और तेरे भजन में,
कटे सुख से शामो सहर चाहता हूँ।
कृपानिध कृपा की ...
जीवन में जग से गुजरने के पहले,
चरण की शरण में गुजर चाहता हूँ।
कृपानिध कृपा की ...
हमेशा ही राजेश प्रेमाश्रुओं से,
दृगों को सदा तर बतर चाहता हूँ।
कृपानिध कृपा की ...

धनि धनि चन्दमणि माता

स्वामी प्रपत्त्यानन्द

धनि धनि चन्द्रमणि माता, तूने ईश्वर गोद खेलायो।।
कौशल्या ने राम खेलायो
माँ यशोदा ने श्याम खेलायो,
तूने रामकृष्ण खेलायो।। तूने ईश्वर गोद ...
अयोध्या में रामजी आयो,
मथुरा में श्रीकृष्णजी आयो,
ठाकुर कामारपुकुर में आयो, तूने ईश्वर गोद ...
कौशल्याजी सीता को पाईं,
माँ यशोदाजी राधा को पाईं,
तूने सारदा वधू पायो, तूने ईश्वर गोद ...
रामचन्द्र ने रावण को मारा,
श्रीकृष्ण ने कंस को मारा,
षड्रिपु रामकृष्ण मरवायो।। तूने ईश्वर गोद ...
लीला अद्भुत परमेश्वर की,
धन्य मातु तुम जगदीश्वर की,
तुमने परमेश्वर सुत पायो, तूने ईश्वर गोद ...

चरित्र-निर्माण के सम्बन्ध में

किसी ने कहा है – यदि धन चला गया, तो कुछ भी नहीं गया, यदि तन की क्षति हुई, तो कुछ क्षति हुई, किन्तु यदि चरित्र चला गया, तो सब कुछ चला गया। हमारे ऋषि-मुनियों ने, संसार के महान आचार्यों ने और सभी महान पुरुषों ने मानव के चरित्र-निर्माण पर बल दिया है। मानव का पावन चरित्र ही उसे इस जगत में सर्वत्र सफल और सुयोग्य बनाता है। उसे जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में प्रखर सूर्य के समान देदीप्यमान करता है। यह सामाजिक जीवन में सम्मान-यश की प्राप्ति, भौतिक जगत में उच्च शिखर की उपलब्धि और आध्यात्मिक क्षेत्र में अभीष्ट-प्राप्ति में प्रमुख सहायक है। सच्चरित्रता मानव-जीवन का मेरुदण्ड है, प्राण है। यही मानव-जीवन रूपी अट्टालिका की आधारशिला है। इसीलिये सदाचारिता और सच्चरित्रता की महत्ता को लोक और वेद दोनों ने प्रतिपादित किया है। लोक संस्कृति, लोकगीत और वैदिक ऋचाओं ने चरित्र की महिमा का गायन किया और इसके निर्माण को जीवन का अपरिहार्य अनिवार्य अंग बताया है। भारत के सम्बन्ध में यहाँ तक कहा जाता है –

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः।।

(मनु २/२०)

भारतवासियों के द्वारा अपने चरित्र से पृथ्वी के समस्त मानवों को शिक्षा देने की बात कही गई। यह हमारा आदर्श है।

जगत के अध्यात्म-नभ-मंडल के देदीप्यमान सूर्य स्वामी विवेकानन्द जी युवाओं का आह्वान करते हुये चरित्र के सम्बन्ध में कहते हैं – "प्रयत्न करते रहो, युवा मित्रो! अनन्त नक्षत्रों वाले आकाश की ओर भयभीत दृष्टि से मत देखो कि वह हमें कुचल डालेगा। धीरज रखो, फिर तुम देखोगे कि कई घंटों में वह सब का सब तुम्हारे पैरों तले आ जायेगा। धीरज रखो, न धन से काम होता है, न यश काम आता है और न ही विद्या, प्रेम से ही सब कुछ होता है। चरित्र ही कठिनाइयों की संगीन दीवारें तोड़कर अपना रास्ता बना लेता है।"

इस प्रकार हम देखते हैं कि सच्चरित्रता मानव-जीवन का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण घटक है।

स्वामी विवेकानन्द जी की १५०वीं जन्म-जयन्ती के उपलक्ष्य में विद्यालयों, महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों में सम्पूर्ण देश-विदेश में चरित्र-निर्माण, व्यक्तित्व-विकास और नैतिक मूल्यों पर बड़े-बड़े विशेषज्ञों के कई व्याख्यान हुए। इससे जन-चेतना जगी। छात्रों और नागरिकों में सजगता आई। इससे लोग विभिन्न स्तर से, विभिन्न प्रकार से अपने जीवन को निर्मल, सुखी, स्वस्थ बनाने का प्रयास कर रहे हैं। लेकिन अभी समाज का कुछ भाग नैतिकता, सच्चरित्रता-बोध से अनभिज्ञ है। वे अपने आसपास हो रहे अवांछित क्रिया-कलापों को ही सब कुछ मान ले रहे हैं और इस महान वस्तु से वंचित हैं। इसका एक दृष्टान्त आपको देता हूँ। मैं एक राज्य के अध्ययनरत स्नातकों से मिला। मुझे चरित्र-निर्माण पर दो शब्द कहने को बुलाया गया था। मैंने सोचा कि छात्रों से यह पूछूँ कि उन्होंने जो विषय दिया है, उसके सम्बन्ध में उनकी क्या धारणा है? मैंने कहा कि एक-एक करके सभी बताएँ कि 'चरित्र-निर्माण और व्यक्तित्व विकास' से वे क्या समझते हैं? हॉल में छात्र स्तब्ध थे। मैंने कहा, कुछ तो बोलो, तब एक छात्र ने कहा – हमें दूसरों की सेवा करनी चाहिये। दूसरे छात्र ने बड़े संकोच से कहा – हमें नि:स्वार्थ होना चाहिये। बाकी लड़के तो कुछ बोल ही नहीं सके। उसके बाद मैंने उन्हें यथामति समझाने का प्रयास किया। लगभग एक महीना बाद मैं एक दूसरे राज्य के महाविद्यालय में गया और वही प्रश्न पूछा, तो कोई कुछ बोल नहीं सका। यद्यपि लोग चरित्र-निर्माण पर कई व्याख्यान सुन चुके होंगे, तथापि मूल विषय अज्ञात ही रहा। मैंने सोचा कि मैं संक्षेप में चरित्र-निर्माण का अर्थ और उसकी उपयोगिता को सम्पादकीय का विषय बनाता हूँ, जिससे पाठक सहजता से समझ सकें।

सबसे पहले हम चरित्र के शब्दार्थ पर विचार करते हैं। बृहत् हिन्दी कोशकार लिखते हैं, चरित्र = (पु.) आचरण, व्यवहार, चाल-चलन, कर्तव्य, कर्म-कलाप, शील, स्वभाव, सदाचार, जीवन वृत्त, पैर, गमन। चरित्र-गठन = शील, सदाचार-वृत्ति का निर्माण और चरित्रवान = अच्छे चाल-चलनवाला, सदाचारी।

यदि कोशकार के अर्थ पर विचार करें, तो इससे यह स्पष्ट होता है, चरित्र के निमाण में उपरोक्त सभी चीजें सहायता करती हैं। व्यक्ति का आचरण कैसा है। उसका चाल-चलन कैसा है। वह किस दिशा में, किस क्षेत्र में किस उद्देश्य से गमन करता है और क्या करता है, ये सभी बातें कहीं-न-कहीं उसके चरित्र को प्रभावित करती हैं। चरित्र इन

सबके समन्वित रूप से निर्मित होता है।

चरित्र के सम्बन्ध में स्वामी विवेकानन्द द्वारा प्रदत्त चरित्र की परिभाषा अवलोकनीय है – "हमारा प्रत्येक कार्य, हमारा प्रत्येक अंग-संचालन, हमारा प्रत्येक विचार, हमारे चित्त पर एक प्रकार का संस्कार छोड़ जाता है। यद्यपि ये संस्कार ऊपरी दृष्टि से स्पष्ट न हों, तथापि ये अवचेतन रूप से अन्दर-ही-अन्दर कार्य करने में पर्याप्त समर्थ होते हैं। हम प्रति मुहूर्त जो कुछ होते हैं, वह इन संस्कारों के समुदाय द्वारा ही निर्धारित होता है। मैं इस क्षण जो कुछ हूँ, वह मेरे अतीत जीवन के समस्त संस्कारों का प्रभाव है। यथार्थत: इसे ही चरित्र कहते हैं।"

स्वामीजी की इस उक्ति से यह स्पष्ट होता है कि जीवन के प्रत्येक कार्य, मन में पल-पल उत्थित हो रहे विचारों से मानव-चरित्र का निर्माण होता है। इसलिये हमें अपने प्रत्येक क्रिया-कलापों पर ध्यान रखना होगा। चरित्र दो प्रकार का होता है। अच्छा और बुरा। अच्छे चरित्र का परिणाम अच्छा होता है और बुरे चरित्र का परिणाम बुरा। अच्छे चरित्रवान व्यक्ति की संसार में सर्वत्र पूजा, प्रशंसा होती है और बुरे चरित्र के व्यक्ति की सर्वत्र भर्त्सना होती है।

यद्यपि प्रत्येक व्यक्ति चाहता है कि उसका चरित्र अच्छा हो, उसे लोग सदाचारी और सच्चरित्रवान व्यक्ति के रूप में सम्मान दें, उसकी प्रशंसा करें। किन्तु सदाचारी बनने के लिये जिन अवांछित वस्तु और विचारों से बचना चाहिये, जिन सत्कर्मों को करना चाहिये, जिन सद्गुणों और सद्विचारों का चिन्तन-मनन करना चाहिये, वह काम वे सजगता से नहीं करते। तब इस स्थिति में सच्चे मानव-चरित्र का निर्माण कैसे होगा?

सुदृढ़ सच्चरित्र के निर्माण हेतु स्वामी विवेकानन्द जी के निम्नलिखित विचार अनुकरणीय हैं – "प्रत्येक मनुष्य का चरित्र इन संस्कारों द्वारा ही नियमित होता है। यदि अच्छे संस्कारों का प्राबल्य रहे, तो मनुष्य का चरित्र अच्छा होता है और यदि बुरे संस्कारों का प्राबल्य रहे, तो बुरा। यदि कोई व्यक्ति निरन्तर बुरे शब्द सुनता रहे, बुरे विचार सोचता रहे, बुरे कर्म करता रहे, तो उसका मन भी बुरे संस्कारों से पूर्ण हो जायेगा और बिना उसके जाने ही वे संस्कार उसके समस्त विचारों और कार्यों पर अपना प्रभाव डालते रहेंगे। वास्तव में वे बुरे संस्कार निरन्तर अपना कार्य करते रहते हैं। अत: बुरे संस्कार-सम्पन्न होने के कारण उस व्यक्ति के कार्य भी बुरे होंगे, वह एक बुरा व्यक्ति बन जायेगा। वह इससे बच नहीं सकता। इन संस्कारों की समष्टि उसमें दुष्कर्म करने की प्रबल प्रवृत्ति उत्पन्न कर देगी, वह इन संस्कारों के हाथ का एक यन्त्र-सा बनकर रह जायेगा। इसी प्रकार यदि कोई व्यक्ति अच्छे विचार रखे और सत्कर्म करे, तो उसके इन संस्कारों का प्रभाव भी अच्छा ही होगा तथा उसकी इच्छा न होते हुये भी, वे उसे सत्कार्य करने के लिये प्रेरित करेंगे। जब व्यक्ति इतने सत्कार्य और सच्चिन्तन कर चुकता है कि उसकी इच्छा न रहते हुये भी उसमें सत्कर्म करने की एक अनिवार्य प्रवृत्ति उत्पन्न हो जाती है। ...तब वह अच्छे संस्कारों के हाथ का एक कठपुतली जैसा हो जायेगा। जब ऐसी स्थिति हो जाती है, तभी उस व्यक्ति का चरित्र स्थिर कहलाता है।"

मानव-चरित्र के निर्माण में उसके माता-पिता-अभिभावक, स्वजन, परिजन, सगे-सम्बन्धियों और शिक्षकों का योगदान होता है। बचपन से ही माता-पिता उसे अच्छी बातें बोलना और अच्छा काम करना सिखाते हैं। ठीक से उठना, बैठना, चलना, बड़ों को सम्मान करना, उन्हें प्रणाम करना आदि सिखाकर अच्छी आदतें डालते हैं। शिक्षा संस्थानों में छात्र-छात्राओं को शिक्षक सत्य, नैतिकता, परोपकार, आज्ञाकारिता, दूसरों की सेवा करना, परस्पर प्रेम और सौहार्द की शिक्षा देते हैं। उन्हें जीवन-लक्ष्य की ओर अग्रसर होने के लिये आवश्यक पथ-प्रदर्शन करते हैं। वे समाज के अन्य बड़े लोगों के सदाचारी जीवन से सच्चरित्र बनने की प्रेरणा लेते हैं। ये सभी तत्त्व मिलकर मानव के महान चरित्र का निर्माण करते हैं। इसलिये आधुनिक युग में नई शिक्षा नीति में आदर्शोन्मुखी शिक्षा पर विशेष बल दिया जा रहा है और इसके लिये राष्ट्रीय सैन्य दल, राष्ट्रीय सेवा योजना आदि योजनाओं को पाठ्यक्रम का अंग बनाया गया है। महान चरित्र वाला व्यक्ति कैसा होता है? कर्तव्य-पालन, अनुशासन और संयम महान चरित्र के द्योतक हैं। इस सम्बन्ध में स्वामीजी कहते हैं – "यदि तुम सचमुच किसी व्यक्ति के चरित्र को जाँचना चाहते हो, तो उसके बड़े कार्यों से उसकी जाँच मत करो। हर मूर्ख किसी विशेष अवसर पर वीर बन सकता है। व्यक्ति के अत्यन्त साधारण कार्यों की जाँच करो, वास्तव में उससे ही तुम्हें एक महान पुरुष के वास्तविक चरित्र का पता लग सकता है। आकस्मिक अवसर तो छोटे-से-छोटे व्यक्ति को भी किसी-न-किसी प्रकार बड़ा बना देते हैं। परन्तु वास्तव में महान तो वही है, जिसका चरित्र सदैव और सब अवस्थाओं में महान तथा सम रहता है।" ○○○

निवेदिता की दृष्टि में स्वामी विवेकानन्द (१६)

संकलक : स्वामी विदेहात्मानन्द

६ मार्च, श्रीमती बुल को –

स्वामीजी इस समय अपने स्थान में हैं। मुझे एक बार फिर अपने पिता मिल गये हैं, जिन्हें मैंने दस साल की आयु में खो दिया था। स्वामीजी सचमुच ही शान्ति में विराज रहे हैं – वैसी ही मधुरता और अपूर्व शक्ति के साथ।

कल वे भारत के ईसाईकरण पर स्वगत में बोल रहे थे। क्या यह सत्य है कि मिशनरी संगठनों के लोग ज्वाइंट स्टाक कम्पनी बनाकर उद्योगों को खरीद रहे हैं और कर्मचारियों का बलपूर्वक धर्मान्तरण करने पर विचार कर रहे हैं! क्या यह बात सत्य हो सकती है? सुनकर लज्जा से सिहर उठना पड़ता है। मदर रोलाण्ड ने शायद कहा होता, 'हे ईसा, यह तुम्हारे नाम पर क्या चल रहा है!'

वे स्वयं से पूछ रहे थे, ''इस मिशनरी प्रयास से जनता को बचाने के लिये हम भला प्रयास भी क्यों करें? उन्हें भोजन की जरूरत है! क्या हम उन्हें खाने को दे सकते हैं? आदि आदि। यह सब सुनने के बाद मेरी आचार्यदेव से दुबारा भेंट नहीं हुई, परन्तु उनके इस सन्देश से मेरा हृदय आलोकित हो गया है, 'सभी मतवाद सत्य हैं' – भारतीय जनता को पतन से बचा सके, वही मत सत्य है। उन्हें ईसाई बन जाने दो, यदि वे बिना कुछ छोड़े भोजन तथा सम-व्यवहार पा सकें। परन्तु मुझे नहीं लगता कि ऐसा करना आवश्यक होगा। हम लोग निश्चित रूप से पर्याप्त संख्या में युवकों को इसके लिये प्रेरित कर सकेंगे कि वे सब कुछ त्याग करके संसार तथा मानवता की सेवा में कूद पड़ें और सक्रिय रूप से साम्यमंत्र का प्रचार करें। ...

थोड़ी देर पहले मेरी उनसे भेंट हुई। वे यह कहते हुए आये, ''मैं फिर कार्य करने की मन:स्थिति में हूँ।'' स्वामीजी, सारदानन्द धन एकत्र करने बम्बई जायेंगे। स्वामीजी स्वयं मठ में थोड़े समय रहकर कार्य करेंगे। सभी को फैल जाना होगा। बहुत-से लड़कों को भिक्षा माँगने निकलना होगा, क्योंकि वहाँ उनके लिये संसाधन नहीं हैं। मैंने देखा कि स्वामीजी स्वयं को भयंकर संघर्ष से आच्छन्न अनुभव कर रहे हैं। योगानन्द तथा उनकी अपनी बीमारी एक अतिरिक्त बोझ नहीं हुई है। योगानन्द के लिये प्रतिदिन दस रुपये लगते हैं। वे कहते हैं, वे नहीं चाहते कि उनके शिष्य लोग भी उन्हीं के समान अनुभवों से होकर गुजरें। उनका कार्य है – मनुष्य-निर्माण, परन्तु स्वामीजी को लगता है कि उन लोगों को अभाव में रखने के स्थान पर भोजन तथा अन्य आवश्यकताएँ पूरी करके वे यह कार्य अधिक आसानी से सम्पन्न कर सकते हैं। केवल देहधारण के लिये इतना संघर्ष मनुष्य को डुबा देती है, विशेषकर अपरिपक्व लोगों को। कितनी सत्य है यह बात! अद्भुत, अद्भुत रूप से सत्य है! ...

इन्हीं सब बातों के बीच, भारत तथा भारतीय जनता के विषय में उनका चिन्तन-प्रवाह चल रहा था – उनका मन इतनी तीव्र गति से सक्रिय था कि मेरे लिये उनका अनुसरण कर पाना कठिन हो उठा था। – किस प्रकार उन लोगों के लिये आजीविका के नये उपाय खोज निकाले जायँ? कालोनी बनाना, फसल-उत्पादन – मनुष्य का निर्माण करने के लिये। किस प्रकार भारत के पुराने उद्योगों के लिये यूरोप तथा अमेरिका में बाजार खोजे जायँ? ट्रेड-सिक्रेट (तकनीक) खरीदने के लिये धन की कहाँ से व्यवस्था की जाय? और उस सिक्रेट को बड़े पैमाने पर उत्पादन के लिये कैसे उपयोग किया जाय? आदि आदि।[१]

१. स्वामीजी सर्वदा भारतीय जनता की आर्थिक उन्नति के चिन्तन में लगे रहते थे। विभिन्न स्थानों पर इसके पर्याप्त उदाहरण मिलते हैं। एक उदाहरण लेते हैं। निवेदिता ने ७ अगस्त, १८९८ को नेल हेमण्ड के नाम पत्र में लिखा था – ''एक दिन आचार्यदेव हवाई किले बना रहे थे : बिहार के विरल जनसंख्या वाले स्थानों में कृषि-फार्म जैसा कुछ बनाया जायेगा, आदि आदि (वैसे उन्होंने यह भी कहा कि इसे होने में कई सौ वर्ष लग जायेंगे।) और अन्त में बोले, 'इस कार्य के लिये मैं निश्चय ही श्री तथा श्रीमती हेमण्ड को तथा और भी अनेक अंग्रेज कर्मियों को ले आऊँगा और

क्रमश: मैं समझ पा रही हूँ कि मेरा यहाँ रहना उनके लिये बोझ के समान है। कौन-सा अनभिप्रेत भविष्य मेरी प्रतीक्षा कर रहा है, इस विषय में युम (मैक्लाउड) तुम्हें बतायेगी। परन्तु पीछे हटना कायरता और निकृष्टता होगी। आज मैंने स्वामी सारदानन्द के समक्ष इस बात का उल्लेख किया, तो उत्तर में उन्होंने कहा, ''हाँ, स्वामीजी उस दिन तुम्हें वापस यूरोप भेजने की बात कह रहे थे!'' ऐसा लगा मानो मेरे पाँवों के नीचे धरती खिसक रही है, क्योंकि मैं सोचती थी कि यहाँ मेरे लिये कितने कार्य पड़े हैं – लेकिन भगवान जानें कि क्या होगा – मैं कुछ भी समझ नहीं पा रही हूँ। इसके तत्काल बाद मैंने उनके (स्वामीजी के) वे शब्द सुने, जिन्हें मैंने युम को हूबहू लिख भेजा है – वे शब्द जो केवल 'माँ' के लिये ही निर्दिष्ट थे –

'बेटी, मुझे प्रसन्न करने के लिये तुम्हें बहुत-कुछ जानने की आवश्यकता नहीं है; केवल पूरे हृदय के साथ मुझसे प्रेम करने से ही हो जायेगा।'

१२ मार्च, १८९९ : मैक्लाउड को –

पिछली रात मेरी स्वामीजी से भेंट हुई थी। अपराह्न में चार बजे एक संन्यासी मिलने आए और जब मैंने बताया कि मैं 'प्रबुद्ध-भारत' पत्रिका के लिए स्वामीजी का साक्षात्कार लेना चाहती हूँ, तो उन्होंने प्रस्ताव किया कि वे मठ लौटते समय शाम के ६ बजे मुझे बजरे में ले जाएँगे। मुझे वापस लाने के लिए साथ में सदानन्द भी गए थे और इसलिए हम टहलते हुए ही वापस लौटे। पूरी घटना बड़ी अद्भुत हुई थी।

हम लोग वहाँ ८ बजे पहुँचे। स्वामीजी वृक्ष के नीचे धूनी के पास बैठे हुए थे। वे नौका से नीचे उतर आये थे। शायद इस कारण कि संन्यासियों के साथ किसी महिला के साथ साक्षात्कार की दृष्टि से तब तक विलम्ब हो चुका था।

मेरा साक्षात्कार पूरा हो जाने के बाद वे बोले, 'सुनो मार्गरिट, मैं बहुत दिनों से न्यूनतम बाधा के मार्ग के विषय में सोच रहा हूँ, परन्तु यह एक भ्रान्ति मात्र है। यह एक सापेक्ष वस्तु है। जहाँ तक मेरा सवाल है, अब मैं इस पर कभी सिर खपानेवाला नहीं हूँ। संसार का इतिहास कुछ सच्चे लोगों का इतिहास है और जब कोई व्यक्ति सच्चा होता है, तो सारे जगत् को उसके चरणों में आना पड़ता है। मैं अपने आदर्श के साथ समझौता नहीं कर सकता; अब मैं सीधे-सीधे आदेश दूँगा।'[२]

और अन्त में, जब मैंने उनसे कहा कि आगामी शनिवार, २५ मार्च को मुझे 'आजीवन सदस्य' बना लें, तो वे तत्काल बोले, 'वैसा ही होगा।' उन्होंने यह भी कहा कि कल सुबह उन्होंने दो लोगों को ब्रह्मचर्य-व्रत की दीक्षा दी है।

[यह 'साक्षात्कार' बिना नाम के प्रबुद्ध भारत के अप्रैल अंक में प्रकाशित हुआ था। वैसे वहाँ न्यूनतम बाधा की बात नहीं है। वहाँ प्रकाशित चर्चा का मूल विषय था – यदि धर्मान्तरित हिन्दू लोग स्वधर्म में लौट आना चाहें, तो उन्हें लेना चाहिये या नहीं? स्वामीजी बोले – निश्चय ही। 'वे लोग किस जाति के होंगे' – यह पूछे जाने पर स्वामीजी ने बताया कि वे एक नयी जाति के रूप में संगठित होंगे, उन्हें इष्ट-साधना आदि में पूरी स्वाधीनता रहेगी, आदि आदि। इस प्रसंग में उन्होंने रामानुज तथा चैतन्यदेव द्वारा प्रवर्तित वैष्णव-आन्दोलन की समाज-गठन में भूमिका की विशेष प्रशंसा की।]

जिस परिवेश में यह चर्चा हुई थी, निवेदिता ने उसका संक्षेप में सुन्दर वर्णन किया है – ''स्थान और समय, दोनों ही मनोरम थे। ऊपर आकाश में तारे थे और चारों ओर बहती हुई गंगा की कलकल धारा थी। एक ओर धुँधले-से आलोकित मठ-भवन का आभास हो रहा था, जिसकी पृष्ठभूमि में ताड़ और ऊँचे छायादार वृक्ष थे।''

चर्चा समाप्त हो जाने पर – ''स्नेहपूर्वक 'शुभ रात्रि' कहने के बाद इन महान् धर्माचार्य ने अपनी लालटेन उठायी और मठ की ओर वापस चले गये और मैं गंगा के पथहीन मार्ग से उसकी विविध आकार-प्रकारों की नौकाओं के बीच से होकर गुजरती हुई कलकत्ते की ओर लौट पड़ी।'' **(क्रमशः)**

वे लोग मेरे इस कार्य के लिये अवश्य आयेंगे।' ''

२ यहाँ 'न्यूनतम बाधा के मार्ग' की थोड़ी व्याख्या जरूरी है। स्वामीजी के अमेरिका से लौटने के बाद, समाज तथा धर्म विषयक उनकी उक्तियों को लेकर पूरे देश में भयंकर हलचल मच गयी थी। उन्होंने परम्परागत मतों पर आघात किया; और दूसरे पक्ष ने भी उन पर बड़े प्रचण्ड रूप से प्रतिघात किया। इससे स्वामीजी के बन्धु-बान्धव आशंकित हो गये। स्वामीजी से अनुरोध किया गया कि वे विभिन्न दलों के साथ मिल-जुलकर कार्य करें; निवेदिता आदि कोई-कोई इस दिशा में अग्रसर भी हुए। इस 'न्यूनतम बाधा' के विषय में स्वामीजी ने भी गम्भीरतापूर्वक विचार किया। इस विचार द्वारा स्वामीजी जिस निष्कर्ष पह पहुँचे थे, यह उनकी उपरोक्त उक्ति से ज्ञात हो जाता है।
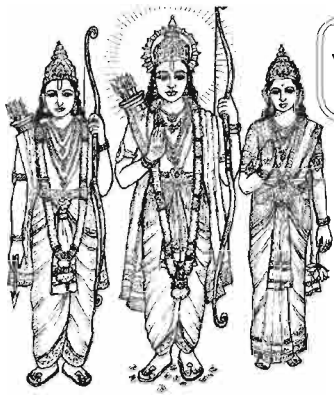
यथार्थ शरणागति का स्वरूप (४/२)

पं. रामकिंकर उपाध्याय

(पं रामकिंकर महाराज श्रीरामचरितमानस के अप्रतिम विलक्षण व्याख्याकार थे। रामचरितमानस में रस है, इसे सभी जानते हैं और कहते हैं, किन्तु रामचरितमानस में रहस्य है, इसके उद्घाटक 'युगतुलसी' की उपाधि से विभूषित श्रीरामकिंकर जी महाराज थे। उन्होंने यह प्रवचन रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के पावन प्रांगण में १९९२ में विवेकानन्द जयन्ती के उपलक्ष्य में दिया था। 'विवेक-ज्योति' हेतु इसका टेप से अनुलिखन स्वर्गीय श्री राजेन्द्र तिवारी जी और सम्पादन स्वामी प्रपत्त्यानन्द जी ने किया है । – सं.)

रावण ने जब प्रणाम किया, तो मारीच भी गद्गद् हुआ होगा, अच्छा, अच्छा, कहो कैसे आगमन हुआ?

कवन हेतु मन ब्यग्र अति अकसर आयहु तात।। ३/२४

रावण ने सारी कथा सुनाई और अपना उद्देश्य बता दिया। बोला, तुम कपट मृग बनो, मैं उस तपस्वी की पत्नी का हरण करना चाहता हूँ। अब वह मारीच तो श्रीराम का पहले ही यज्ञ में अनुभव कर चुका था। उसने रावण को समझाने की चेष्टा की – तुम जिनको साधारण व्यक्ति समझते हो, वे महान हैं, तुम ऐसी चेष्टा मत करो। अभी जो रावण झुककर प्रणाम कर रहा था, वही तनकर खड़ा हो गया। बोला, अच्छा तो मैंने प्रणाम कर दिया, तो तुमने समझ लिया कि मैं तुम्हें गुरु बनाने आया हूँ। तुम मेरे गुरु हो? एक क्षण में बदल गया और कह दिया –

गुरु जिमि मूढ़ करसि मम बोधा।
कहु जग मोहि समान को जोधा।। ३/२५/२

अभी प्रणाम किया और अभी कहा, अरे दुष्ट, क्या मेरे समान योद्धा संसार में कोई और है? भगवान ने आकाशवाणी के माध्यम से देवकी को सावधान किया कि तुम भ्रमित मत हो जाओ। कंस कभी विनम्रता प्रदर्शित करे, तो उसके मूल में केवल प्रदर्शन ही प्रदर्शन होगा। कोई उत्कृष्ट भावना नहीं हो सकती। श्रीमद्भागवत में आता है कि वसुदेव कंस को मनाने लगे। उन्होंने कहा, राजन् ! एक दिन तो मृत्यु अनिवार्य है, तो इस प्रकार का घृणित कर्म क्यों कर रहे हैं कि जिसके प्रति आपने इतना स्नेह प्रगट किया, उसी का वध करने के लिये आप प्रस्तुत हो गये? कंस किसी भी तरह से समझने के लिये प्रस्तुत नहीं है और वसुदेवजी ने कहा कि अच्छा मैं वचन देता हूँ कि देवकी के गर्भ से जितने पुत्र होंगे, वे सब मैं आपको दे दूँगा, आप आठवें का वध कर दीजिएगा। कंस मान गया।

वसुदेव पहले पुत्र को लेकर कंस के पास गये, तो कंस ने कहा – नहीं नहीं, यह बालक तो मेरे लिये कोई समस्या नहीं है, मैं इसका वध क्यो करूँगा, इसे ले जाओ। तब देखिए, पहले तो ईश्वर की भूमिका आकाशवाणी ने बनाई, अब पधार गये संत महोदय। देवर्षि नारद आ गये और पूछ दिया, तुमने इसे लौटा क्यों दिया? संत का यही कार्य है क्या? कंस ने तो दया दिखाई, बालक को लौटा दिया और संत कहता है, तुमने लौटा कैसे दिया? उसने कहा, महाराज, आठवें से ही तो मुझे भय है, इसे मैं क्यों मारूँ? तब देवर्षि नारद ने एक ऐसा विलक्षण संकेत किया कि कंस आश्चर्यचकित हो गया। नारदजी एक कमल का फूल लिये हुए थे। उसमें अनेक पंखुड़ियाँ थीं। बोले, बताओ, इसमें आठवीं पंखुड़ी कौन-सी है? इसका अर्थ है कि जिस पंखुड़ी को आप एक मानकर गिनेंगे और उसका जो आठवाँ होगा, दूसरी पंखुड़ी को एक मानकर गिनेंगे, तो उसका आठवाँ दूसरा होगा। इस तरह से सभी पंखुड़ियाँ आठवीं सिद्ध होंगीं। नारदजी ने कहा कि जब इस कमल की पंखुड़ियों में ही निर्णय नहीं हो पा रहा है, वास्तव में आठवीं पंखुड़ी कौन-सी है, तो क्या पता कि तुम किसे एक मानकर गिन रहे हो और देवता किसे एक मानकर गिन रहे हैं? कहीं पहला ही तो आठवाँ नहीं है? इसलिये तुम मत छोड़ो। आप विचार करके देखिए, कितनी निर्दयता की बात लगती है ! कहा जाता है कि –

संत सरल चित जगत हित। १/३-ख

इतने उदार, इतने कोमल चित्तवाला संत, इस प्रकार का कार्य क्यों करता है? उसका भी अभिप्राय यही है कि भ्रमित मत हो जाओ। उसका और भी अन्तरंग तात्पर्य उस तात्पर्य के अर्थों से जुड़ा हुआ है। उसके विस्तार में जाने की इस समय कोई आवश्यकता नहीं है। मूल सूत्र यही है कि वसुदेवजी के मन में कहीं यह भावना उत्पन्न हो गई कि कंस का चरित्र बड़ा उत्कृष्ट है, तो इनके मन में जो

व्याकुलता ईश्वर को पाने की, जो असह्य स्थिति का बोध है, वह उत्पन्न नहीं होगा। व्यक्ति से रहा नहीं जाता, जब त्राहि-त्राहि ऐसा अनुभव करने लगता है, तब भगवान के अवतरण की भूमिका बनती है।

सचमुच कंस की कितनी निर्दयता का दृश्य सामने आया ! बालक को उसने मंगाया और उसका वध कर दिया। इस तरह से छह पुत्रों का उसने वध कर दिया। तब आप कल्पना कीजिए, वसुदेव के मन में, देवकी के मन में कंस के प्रति जो एक आस्था बन गई थी, उसके प्रति जो महत्त्वबुद्धि बन गई थी, वह सर्वथा समाप्त हो गई। उसकी निर्दयता, क्रूरता, स्वार्थपरता, उनके सामने स्पष्ट रूप से आ गई। लोगों को ऐसा ज्ञात हुआ कि सातवाँ गर्भ श्रवित हो गया, पर भगवान ने सातवें गर्भ को संकर्षण द्वारा रोहिणी के गर्भ में स्थानान्तरित किया। आठवें गर्भ के बारे में यहाँ जो संकेत है, उसे मैं थोड़ा स्पष्ट कर दूँ। जो छह पुत्र मारे गये, ये छह सद्गुण हैं। भगवान के आगमन से पहले जो सद्गुण जन्म लेते हैं, वे स्थाई नहीं होते।

वैसे तो कई लोग कहते हैं कि अगर हम ईश्वर की सत्ता न मानें तो। अगर सद्गुण हों, तो क्या ईश्वर को मानना आवश्यक है? आवश्यक है। भगवान ने जब गुरुपुत्रों को जीवन-दान दिया और देवकीजी से पूछा, तो उन्होंने यही कहा कि मेरे जिन पुत्रों की मृत्यु हो गई थी, मैं उन्हें पुन: पाना चाहती हूँ। भगवान ने उन पुत्रों को पुन: माँ के समक्ष व्यक्त कर दिया। इसका आध्यात्मिक तात्पर्य यह है कि ईश्वर के पहले जो सद्गुण उत्पन्न होते हैं, वे चिरजीवी नहीं होते, पर ईश्वर के आने के बाद जो गुण हमारे जीवन में आते हैं, वे वस्तुत: शाश्वत गुण होते हैं। इसलिये वह आध्यात्मिक परम्परा और साधना के लिये भी ठीक अनुकूल था। इसीलिये जब भगवान आए, तो उन्होंने कैसे अनोखा काम किया? वसुदेव जब पुत्रों को कंस के पास लेकर जाते थे, कंस इतनी प्रशंसा अवश्य कर देता था कि वसुदेव, मैं जानता हूँ, तुम बड़े सत्यवादी हो। आठवें पुत्र के रूप में जब भगवान आए, तो उन्होंने पिताजी को पहला पाठ पढ़ाया कि कंस को सूचना देने की आवश्यकता नहीं है, मुझे ले जाकर यशोदा के बगल में सुला दो। भगवान का अभिप्राय था कि क्या तुम कंस से प्रमाण पत्र पाकर ही धन्य हो जाओगे क्या? तुम उसी की प्रतीक्षा कर रहे हो क्या? अरे, वह आपकी अच्छाई का भी दुरुपयोग करना चाहेगा। जो सर्वदा अधार्मिक व्यक्ति होते हैं, वे अधर्म तो करते ही हैं, पर सामनेवाले व्यक्ति के धर्म को अपना रक्षा कवच बना लेते हैं।

एक बड़ी विलक्षण बात है। दुर्योधन युधिष्ठिर के धर्म की वृत्ति का पग-पग दुरुपयोग करता है। द्रौपदी का इतना अनादर हो रहा है, तो दुर्योधन को भय होना चाहिये कि युधिष्ठिर या पाण्डव मेरे ऊपर प्रहार करेंगे, पर वह मान बैठा है कि युधिष्ठिर ऐसा धार्मिक है कि जुए में हार गये हैं, तो उस मर्यादा का पालन करेंगे। अधर्म की स्थिति यह होती है कि वह सर्वदा अपने अधर्म का भी लाभ लेता है और सामने वाले के धर्म का भी दुरुपयोग करते हुए लाभ लेता है। इसलिये भगवान ने मानो यही कहा कि कंस के प्रमाण पत्र तो तुम देख ही चुके हो और इससे प्रत्येक पुत्र मारा गया। तब उन्होंने परम सत्य के लिये कंस और कंस के प्रमाण पत्र को महत्त्व नहीं दिया। तब भगवान अवतार लेकर कंस का संहार करते हैं। मानो आध्यात्मिक साधना का यह सूत्र है कि अगर हम किसी बुराई से मुक्त होना चाहते हैं, तो यह आवश्यक है कि बुराई हमारे मन में पूरी बुराई के रूप में प्रतीत होने लगे। यदि प्रतीत नहीं होगी, तो समझौता जीवन में बना रहेगा, जो साधक जीवन के लिये उचित नहीं है।

वही समझौता विभीषण के जीवन में है। विभीषण को रावण में गुण दिखाई दे रहा है, इसलिये वे रावण को नहीं छोड़ पा रहे हैं। पर उसकी कलई तो बाद में खुली न कि रावण इतना सहिष्णु क्यों बन गया था? एक कारण तो आप एक-दो दिन पहले सुन चुके हैं, एक कारण और भी था कि जब तीनों भाई वरदान माँगने लगे, तो उस समय रावण ने ध्यान दिया कि तीनों भाइयों में विभीषण का स्वभाव थोड़ा भिन्न था। वह देख रहा था कि यह क्या माँगता है और जब विभीषण ने भगवान की भक्ति का वरदान माँगा, तो रावण तो पक्का स्वार्थी है। उसने सोचा कि अगर मैं यह चेष्टा करूँ कि वह भगवान की भक्ति न करे, तब तो इसका अर्थ है कि ब्रह्मा और शंकर ने जो इसे वरदान दिया है, वह झूठा हो गया। अगर इसको दिया गया वरदान झूठा हो गया, तो हमारा वरदान भी तो झूठा हो जायेगा। इसलिये, चलो अच्छा है, इसका पूजा-पाठ चलने दो, इतना ही तो करेगा। लेकिन हमें जो वरदान मिला है, वह तो रहे। यह स्वार्थ रावण के मन में था। उस प्रकार की प्रकृति का व्यक्ति

जब भी कहीं कोई अच्छा कार्य करता है, तो कहीं-न-कहीं निम्न स्वार्थ उसका रहता है। अब कोई बकरे को खरीदकर ले आये और बढ़िया-से-बढ़िया उसको खिला रहा हो, उसे देखकर कोई कहे कि वह तो बड़ा भारी उदार है, कितना बढ़िया खिला रहा है। अब उसे तो पता उस दिन चलेगा, जब वह उस बकरे को काटकर उसे अपना भोज्य बना लेगा। इस तरह से जो स्वार्थी व्यक्ति होता है, उसका कार्य सदा निम्न स्वार्थ से ही प्रेरित होता है। इसीलिये जब विभीषण भक्ति करते थे, तो वह बड़ा प्रसन्न होता था। चलो, जो वरदान मिला है, वह थोड़ा पूजा-पाठ करके सत्य हो गया।

इसीलिये वह जो वृत्ति थी, वह रावण के जीवन में पूर्व जन्म का अनुभव था, रावण की सहिष्णुता में अपना स्वार्थ था। परिणाम यह हुआ कि जो राम भक्त हैं, भगवान के भक्त हैं, उनके साथ उस सीमा तक रावण ने अनर्थ तो किया ही, पर जब उसने भगवान की प्रिया का अपहरण किया, तब तो विभीषण के मन में विद्रोह आना चाहिये था। तब तो उन्हें लंका को छोड़कर तुरन्त श्रीराम की ओर चले जाना चाहिये था। पर नहीं जा पाए, नहीं छोड़ पाए। उनके साथ तीसरी समस्या थी, जो मैंने आपसे कहा कि उन्हें यह भी लगने लगा कि इतने दिनों तक मैं रावण के साथ रहा, रावण ने मुझे इतनी सुख-सुविधा दी, अगर मैं छोड़कर चला जाऊँगा, तो लोग क्या कहेंगे? अगर अन्यत्र कहीं चला जाऊँ, तो क्या पता कि कहीं श्रीराम पुराना हिसाब-किताब पूछने लगें कि इतने दिनों तक कहाँ थे? इतने दिनों तक तुम रावण की बुराइयों को देखते रहे और आज मेरे पास चले आए, तो मेरे पास क्या उत्तर है? तो जब साधक बहुत चिन्ता करने लगे कि लोग क्या कहेंगे, तो यह ठीक नहीं है, बल्कि उसको यह ध्यान रखना चाहिये कि ईश्वर क्या कहेंगे? ईश्वर की दृष्टि क्या होगी? क्योंकि अगर वह लोक की दृष्टि से देखेगा, तब तो लोग ऐसा नाच नचायेंगे कि उसकी कोई सीमा नहीं रह जायेगी।

वह व्यंग्यात्मक गाथा तो आपने सुनी ही है कि किसी ने संन्यास लिया और कुछ मस्ती में आकर खेत में जाकर मिट्टी में ही लेट गये। खेत की मेड़ पर सिर था। कुछ स्त्रियाँ उधर से आ रही थीं । उन लोगों ने संन्यासीजी की प्रंशसा नहीं की। उलटे यह कहा कि देखो, गद्दे को छोड़कर मिट्टी में पड़े हुये हैं। एक महिला ने कहा, देखो, घर छोड़कर आया, पलंग छोड़कर आया, पर तकिया लगाने की आदत नहीं गई। अब भी मेड़ पर ही सिर रखे हुए हैं। संन्यासी ने सोचा कि भई, बात तो ठीक है। तो तुरन्त मेड़ पर से सिर उठाकर नीचे लेट गये। थोड़ी देर बाद वे ही महिलाएं लौटीं, तो उन्होंने कहा, देखो, कितना घमंडी है, जरा-सी बात सुनकर बुरा मान गया और नीचे लेट गया, यह क्या साधु है ! तो आप अगर लोगों से साधुता का प्रमाण पत्र लेंगे, तो लोग आपको इतने रूपों में परिवर्तित करने की चेष्टा करेंगे, जिसका कोई अन्त नहीं है। इसलिये आता है कि लक्ष्मणजी जब भगवान राम और श्रीसीताजी के पीछे चलते हैं, तो तुलसीदासजी ने एक शब्द लिखा –

लखन चलहिं मगु दाहिन लाएँ। २/१२२/६

जब वे पथ पर चलते हैं, तो भगवान राम और श्रीसीताजी को दाहिने कर लेते हैं। यही तो जीवन-पथ का सूत्र है। जीवन-पथ पर चलते हुए यह दृष्टि मत डालिए कि कितने लोग मेरे दाएँ हैं और कितने लोग बाएँ हैं। ये दाएँ-बाएँ वाले लोग कब दाएँ से बाएँ हो जायेंगे और कब बाएँ से दाएँ हो जायेंगे, इसका कोई ठिकाना नहीं है। पर यह ध्यान रहे कि प्रभु मेरे अनुकूल हैं कि नहीं। हम जो कार्य कर रहे हैं, वह प्रभु की अनुकूलता के लिये उपयुक्त है कि नहीं, यह दृष्टि होनी चाहिये। **(क्रमशः)**

‘विवेक-ज्योति’ की मूल्य-वृद्धि सूचना

सम्माननीय पाठको ! सभी सामग्रियों – कागज, मुद्रण के गुणवत्ता सुधार और डाक, वेतन आदि की दरों में पर्याप्त वृद्धि से ‘विवेक-ज्योति’ पर आर्थिक भार बहुत अधिक पड़ रहा है । इसलिये हम इसका थोड़ा-सा मूल्य बढ़ाने जा रहे हैं । अब **मई, २०१८** से नयी मूल्य-राशि होगी – **वार्षिक शुल्क रु. १३०/-, एक प्रति रु. १५/, पाँच वर्षों के लिये रु. ६५०/- और दस वर्षों के लिये रु. १३००/-। संस्थाओं के लिये, वार्षिक रु. १७०/- और पाँच वर्षो के लिये रु. ८५०/-। विदेशों के लिए, वार्षिक शुल्क $ ४० और पाँच वर्षो के लिए $ २०० (हवाई डाक से)।** इसके अलावा ‘विवेक ज्योति पुस्तकालय योजना’ के अन्तर्गत **मई, २०१८** से एक पुस्तकालय हेतु सहयोग राशि **१५००/-** होगी। आशा है, आप हमारा पूर्ववत् सहयोग करते रहेंगे ।

स्वामी स्थिरानन्द,
व्यवस्थापक, ‘विवेक-ज्योति’ कार्यालय

कर्म कैसे करें?

स्वामी मुक्तिमयानन्द

रामकृष्ण मिशन विद्यापीठ, चेन्नई

हम सबकी दिनचर्या कर्म से शुरु होकर कर्म में समाप्त होती है। हमारा पूरा जीवन एक कर्म-यज्ञ है। जो व्यक्ति कुशलतापूर्वक कर्म करने की कला जान लेता है, वह सफलता को प्राप्त करता है। जीवन का क्षणार्ध भी निष्कर्म नहीं जाता। गीता में भगवान अर्जुन को यही बात कहते हैं,

न हि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्।
कार्यते ह्यवशः कर्म सर्वः प्रकृतिजैर्गुणैः।।

नि:सन्देह कोई भी मनुष्य किसी भी काल में बिना कर्म किये क्षणमात्र भी नहीं रह सकता। क्योंकि परम तत्त्व की अनुभूति करने वाले तत्त्वज्ञानियों को छोड़कर समस्त मानव समाज प्रकृति के गुणों से वशीभूत होकर कर्म करने के लिए बाध्य है। श्रीरामकृष्ण देव कहते हैं कि इस अनुभूति से जिनके सारे कर्म क्षय हो गये हैं, ऐसे महानुभावों को छोड़, हम सब को कार्य करना पड़ता है। इसलिए यदि हम कर्म-यज्ञ को सार्थक और सफल बनाने के उपाय, कर्मकुशलता के रहस्य समझ लें, तो जीवन में आनेवाली अनेक अनावश्यक ठोकरों से हम बच सकते हैं। स्वामी विवेकानन्द कहते हैं, ''दुर्भाग्य की बात है कि अधिकांश व्यक्ति इस जगत में बिना किसी आदर्श के ही जीवन के अन्धकारमय पथ पर भटकते रहते हैं। यदि आदर्श सहित व्यक्ति हजार भूलें करता है, तो यह निश्चित है कि जिसका कोई भी आदर्श नहीं है, वह दस हजार भूलें करेगा।'' अत: कर्म को 'योग' के आदर्श से जोड़ने से हमें कार्य करने की अनुपम पद्धति प्राप्त होती है। कर्मयोग के द्वारा हम जीवन को सार्थक दिशा और ऊँचाई पर ले जा सकते हैं।

'कर्मयोग' का सर्वोच्च आदर्श है, 'निष्काम कर्म', अर्थात् प्रत्येक कार्य को ईश्वरार्पित बुद्धि द्वारा करते हुए, फल की आकांक्षा न रखते हुए निष्काम भाव से पूजा के रूप में करना। किन्तु यह आदर्श कथन-वाचन मात्र से कार्यरूप में परिणत नहीं होता। इससे पहले हमें कुशलतापूर्वक कार्य करना आना चाहिए। अत: स्वामी विवेकानन्द गीतोक्त कर्मयोग के आदर्श की व्याख्या करते हुए कहते हैं, ''गीता के अनुसार 'कर्मयोग' का अर्थ है – कुशलता से अर्थात् वैज्ञानिक प्रणाली से कर्म करना। कर्मानुष्ठान की विधि ठीक-ठीक जानने से मनुष्य को श्रेष्ठतम फल प्राप्त हो सकता है।'' भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन को यही बात गीता में कहते हैं – **तस्मात् योगाय युज्यस्व योगः कर्मसु कौशलम्।**

किस व्यक्ति के जीवन में यह कर्म-कुशलता चरितार्थ होती है? गीता में भगवान कहते हैं कि जो व्यक्ति कर्मफल के प्रति अनासक्त होकर, जय-पराजय को समान रूप से स्वीकारने को तैयार हो, ऐसे शान्त, स्थिर, दृढ़ मन वाला व्यक्ति ही कर्म को कुशलता से सम्पन्न कर सकता है –

योगस्थः कुरु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा धनञ्जय।
सिद्ध्यसिद्ध्योः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते।। २/४८

यदि योगस्थ होकर किया गया कर्म कुशलता या वैज्ञानिक पद्धति है, तो 'समत्व भाव' से युक्त मन ही योगस्थ अवस्था है। स्वामी विवेकानन्द गीता के इस सिद्धान्त को समझाते हुए कहते हैं, ''सम्भव है, तुम कहो, कर्म करने की शैली जानने से क्या लाभ? संसार में प्रत्येक मनुष्य किसी न किसी प्रकार से तो काम करता ही रहता है। परन्तु यह भी ध्यान रखना चाहिए कि शक्तियों का निरर्थक क्षय भी कोई चीज होती है।'' हमें योगस्थ, अनासक्त होकर सफलता-असफलता की चिन्ता छोड़कर अपने मन को कार्य में समर्पित करना चाहिए। जिस अन्तर्मन में स्थिरता नहीं है, उसका बाह्य कार्य कभी भी दृढ़ नींव पर स्थापित नहीं हो सकता। इस बात पर जोर देते हुए स्वामीजी कहते हैं, Real activity, which is the goal of Vedanta, is combined with eternal calmness, the calmness which cannot be ruffled, the balance of mind which is never distrurbed, whaterver happens. And we all know from our experience in life that is the best attitude for work.

कार्य को मात्र लक्षित या निर्धारित कर देने मात्र से कार्य पूरा नहीं हो जाता। स्वामी विवेकानन्द 'कर्म कौशल' की प्राप्ति में दो अति महत्त्वपूर्ण सन्देश देते हैं – १. लक्ष्य तय करने के बाद फल-प्राप्ति के विषय को भूल जाओ। २. कार्य के साधन, कार्य की पद्धति, कार्य में आवश्यक हर छोटे-बड़े अंग – इन सब पहलुओं पर धैर्य और स्थिरता से कार्य करो। गीता में भगवान कहते हैं –

व्यवसायात्मिका बुद्धिरेकेह कुरुनन्दन।

बहुशाखा ह्यनन्ताश्च बुद्धयोऽव्यवसायिनाम् ।।

अर्थात्, हे अर्जुन, इस कर्मयोग में एक निश्चयात्मिका बुद्धि होती है, किन्तु अस्थिर विचारों वाले विवेकहीन सकाम मनुष्यों की बुद्धियाँ निश्चय ही बहुत भेदोंवाली और अगणित होती हैं। मन की दो अवस्थायें हैं – विच्छिन्न और एकाग्र। जिनका कार्य बुद्धियोग से प्रेरित होता है, वे फल की आसक्ति या चिन्ता छोड़कर समग्र ध्यान लक्ष्य पर एकाग्र करते हैं। जब एक निश्चय कर लिया, तो उस पर डट कर आगे बढ़ो। असफलताओं से सीखो। उन्हें रास्ते का रोड़ा नहीं, सफलता की सीढ़ी बनाओ। लेकिन बहुधा हम लोग अभीष्ट फल की प्राप्ति होगी या नहीं, इसी चिन्ता में पड़े रहते हैं और मन को कार्य में लगने नहीं देते। कार्य के परिणामों की चिन्ता हमें इतना विचलित करती रहती है कि जो क्षमता व शक्ति कार्य की निष्पन्नता में खर्च होनी चाहिए थी, वह दुश्चिन्ता और व्यग्रता में चली जाती है। यही बात हमारे सोचने की क्षमता व कार्यदक्षता को प्रभावित करती है। कर्म के फल की अत्यधिक चिन्ता से जो तनाव होता है, अधिकांशत: उसी से कार्य बिगड़ता है। साधन छोड़ हम केवल साध्य के ऊपर ही दृष्टि गड़ाये बैठे रहते हैं। हम भूल जाते हैं कि प्रत्येक आगामी कल आज की देन है। यदि रसायन ठीक होंगे, तो परिणाम उचित ही होगा। हमारे कार्य का नाश नहीं होगा, आज या कल उसका फल मिलेगा ही। स्वामी विवेकानन्द अपनी प्रसिद्ध वक्तृता 'कर्म और उसका रहस्य' का प्रारम्भ ही इसी महत्त्वपूर्ण तथ्य से करते हैं – ''अपने जीवन में मैंने जो श्रेष्ठतम पाठ पढ़े हैं, उनमें से एक यह है कि किसी भी कार्य के साधनों के विषय में उतना ही सावधान रहना चाहिए, जितना कि उसके साध्य के विषय में और मेरा यह मत है कि सब प्रकार की सफलता की कुँजी इसी तत्त्व में है – साधनों की ओर भी उतना ही ध्यान देना अच्छा है, जितना साध्य की ओर। हमारे जीवन में एक बड़ा दोष यह है कि हम आदर्श से ही इतना अधिक आकृष्ट रहते हैं, लक्ष्य हमारे लिए इतना अधिक आकर्षक होता है, ऐसा मोहक बनकर हमारे भाव क्षितिज पर इतना विशाल बन जाता है कि बारीकियाँ हमारी दृष्टि से ओझल हो जाती हैं। लेकिन अफसलता मिलने पर यदि हम बारीकी से उसकी जाँच करें, तो ९९% यही पायेंगे कि उसका कारण था – हमारा साधनों की ओर ध्यान न देना। हमें आवश्यकता है अपने साधनों को पुष्ट करने की और उन्हें पूर्ण बनाने की। यदि हमारे साधन बिल्कुल ठीक हैं, तो साध्य की प्राप्ति होगी ही।''

प्रत्येक कारण ही परिवर्तित होकर कार्य बनता है। अर्थात् जब हम कार्योत्पादन के संसाधनों का योग्य उपयोग करेंगे, तो कार्यफल स्वत: उसके परिणामस्वरूप होगा। पर हम जैसे ही कार्य आरम्भ करते हैं, फल की चिन्ता हमारे मन-मस्तिष्क पर हावी हो जाती है। जिस चिन्तन से कुशाग्र बुद्धि को कार्य में स्थिर कर, बुद्धि को योग बनाकर कार्य के साथ जोड़ना है, वह दुश्चिन्ता रूपी आँधी में फँस जाती है। फल की उत्कण्ठा बुद्धि को अस्थिर कर देती है। जो बुद्धि एकाग्रता छोड़ दे, लक्ष्य से भटक जाये, वह योगस्थ बुद्धि नहीं हो सकती। इसीलिए श्रीकृष्ण अर्जुन को 'योगस्थ: कुरु कर्माणि' का उपदेश देते हैं। श्रीकृष्ण फल के प्रति आसक्ति को त्यागकर योगस्थित होकर कर्म की प्रेरणा देते हैं। यहाँ तक कि जो फल हेतु प्रेरित होकर सकाम कर्म में लिप्त हैं, उन्हें वे 'कृपण' कहते हैं। फल की लालसा ही चित्त को चंचल करती है और कर्म सफलता में, लक्ष्य प्राप्ति में बाधक बनती है। इसे भगवान गीता में बड़े ही वैज्ञानिक ढंग से समाझाते हैं। वे कहते हैं कि फलासक्ति का नाश न होने से चित्त की चंचलता से प्रभावित इन्द्रियाँ बुद्धिमान व्यक्ति के मन को भी हर लेती हैं, अर्थात् पथभ्रष्ट, लक्ष्यच्युत कर देती हैं। इसलिए वे अर्जुन को कहते हैं, 'कुरु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा' - क्यों संग अर्थात् फलासक्ति का त्याग करना है? इसका उत्तर भगवान जैसे इन श्लोकों के द्वारा देते हैं –

ध्यायतो विषयान्पुंसः सङ्गस्तेषूपजायते।
सङ्गात्सञ्जायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते।।
क्रोधाद्भवति सम्मोहः सम्मोहात्स्मृतिविभ्रमः।
स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति।।

फल अर्थात् विषयों का चिन्तन करने वाले व्यक्ति की उसमें फलासक्ति हो जाती है, यह आसक्ति उन विषयों को पाने की कामना उत्पन्न करती है। इन कर्मफलों की प्राप्ति में विघ्न पड़ने से मनुष्य में क्रोध उत्पन्न होता है। यही क्रोध मनुष्य के विवेक-विचार को हर कर उसे मूढ़ अर्थात् भ्रमित कर देता है और उससे भ्रमित व्यक्ति की स्मृतिशक्ति का लोप होता है। इस भ्रम और प्रमाद के कारण उसके विवेकात्मक ज्ञान का भी नाश होता है। वह क्या करे, क्या न करे, इसका वह स्थिर बुद्धि से निर्णय नहीं ले पाता। फल के लोभ में वह अपनी चित्त की शान्ति और गरिमा को भी दाँव पर लगाकर अपने पतन को निमंत्रण देता है।

अत: हम जब भी कोई कार्य हाथ में लें, तो उसे अच्छे

शेष भाग अगले पृष्ठ पर

ठाकुर ही सब कुछ हैं

रामकृष्ण संघ में भगवान श्रीरामकृष्ण देव को ही एकमात्र गुरु माना जाता है। यद्यपि मन्त्रदीक्षा के समय मन्त्रप्रदाता गुरु दीक्षार्थी को मन्त्र देते हैं और उस समय यथाविधि गुरुपूजा भी होती है, तथापि गुरु शिष्य को यही उपदेश देते हैं कि श्रीरामकृष्ण ही एकमात्र गुरु हैं और वे स्वयं केवल एक माध्यम हैं। रामकृष्ण संघ के दशम संघाध्यक्ष श्रद्धेय स्वामी वीरेश्वरानन्दजी महाराज ने भक्तों को इस विषय पर अनेक बार उपदेश दिए हैं।

पूजनीय महाराज जब रामकृष्ण संघ के प्रेसीडेंट बने, तब उन्होंने एक दिन उनके सेवक रामगोपाल महाराज (स्वामी प्रमेयानन्द, जो परवर्तीकाल में संघ के सह-संघाध्यक्ष हुए) को रजिस्टर लाने को कहा, जिसमें जन्मतिथि, नाम, पिता का नाम आदि सब लिखा रहता था। महाराज ने वह सब कुछ अपने हाथों से काट दिया। इसलिये एकमात्र रामगोपाल महाराज ही उनकी जन्मतिथि जानते थे। उन्होंने भी महाराज के जीवनकाल में उसे प्रकट नहीं किया। वस्तुत: महाराज नहीं चाहते थे कि कोई गुरु के रूप में उनका जन्मदिन मनाये। यदि कोई कभी पूछता कि उनका जन्मदिन कब है, तो वे उसे बहुत डाँटते। कहते, ''ठाकुर (श्रीरामकृष्ण देव) ही सब कुछ हैं। ठाकुर का जन्मदिन मनाओ।'' अपने-अपने गुरु को लेकर उनका जन्मदिन मनाने के निमित्त विभिन्न गुटों का निर्माण न हो, इसलिए उन्होंने गुरुपूर्णिमा मनाने का निर्देश दिया था।

एक बार एक भक्त छोटा-सी चाँदी की खड़ाऊँ, गंगाजल और कमण्डलु लेकर पूजनीय महाराज के पास आए। उनकी इच्छा थी कि चाँदी के खड़ाऊँ को गुरु जी के चरण स्पर्श कराकर चरणामृत लेकर चले जाएँगे और वह सब अपने पास रख लेंगे। महाराज की आँखों की नसें सूख गयी थीं, इसलिए वे ठीक से देख नहीं पाते थे। आँख के केवल एक कोने से देखते थे। यदि कुछ उस कोने की परिधि में आता, तो वे उसे देख पाते थे। उस दिन महाराज को ठीक से दिख गया। भक्त लोग प्रणाम कर रहे थे। महाराज कुर्सी पर बैठे थे। उन भक्त के प्रणाम करने की बारी आयी। वे प्रणाम करने आये - हाथों में खड़ाऊँ और कमण्डलु है। भक्त ने धीरे-धीरे चाँदी की खड़ाऊँ और कमण्डलु को महाराज के चरण के पास रखा। महाराज कुर्सी पर बैठे-बैठे ही समझ गये। उन्होंने बड़े ही मधुर स्वर में कहा, ''देखूँ-देखूँ यह क्या है?'' भक्त ने भाव-विभोर होकर सब कुछ उनके हाथों में दे दिया। उन्होंने सोचा कि अब तो गुरुदेव स्वयं ही सब कुछ कर देंगे। महाराज ने उन्हें हाथ में लेकर पीछे की ओर फेंक दिया। गंगाजल, कमण्डलु, खड़ाऊँ आदि सब टं-टं की आवाज के साथ लुढ़कते हुए दरवाजे से होकर पार्टीशन से जा टकराये। महाराज ने उन्हें जोर से डाँटते हुए कहा, ''ठाकुर ही सब कुछ हैं।''

दीक्षा के बाद भी महाराज अपने चित्र को नीचे रखने को कहते थे। वे 'मेरा चित्र' नहीं कहते थे। कहते – ''ठाकुर, माँ और स्वामीजी का चित्र ऊपर रखना।'' ठाकुर, माँ और स्वामीजी के बगल में अपना चित्र रखना वे पसन्द नहीं करते थे।

गुरु-शिष्य की बड़ी अद्भुत परम्परा है यह। गुरु अपने जीवन का अनमोल रत्न शिष्य को दे देते हैं और कहते हैं, ''तुम्हारे इष्टदेव – ठाकुर ही सब कुछ हैं।'' ○○○

पिछले पृष्ठ का शेष भाग

से समझें, अपनी आवश्यकता और क्षमताओं को जानें। कार्य सिद्धि के लिए आवश्यक चुनौतियों को समझें और कार्य योजना बनाकर शान्त स्थिर मन से, यहाँ तक कि अपनी असफलताओं से विचलित हुए बिना उनसे सीखते हुए अपने ध्येय के प्रति समर्पित रहें। कर्म को योग से युक्त अर्थात् स्थिर बुद्धि और शान्त चित्त से करने से, न केवल व्यक्ति सर्वोत्तम कार्य सम्पन्न करता है, बल्कि एक सुदृढ़ चरित्र का निर्माण भी करता है। भगवान यही आश्वासन देते हुए गीता में (२.४०) कहते हैं,

नेहाभिक्रमनाशोऽस्ति प्रत्यवायो न विद्यते।

स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्।।२/४०।।

इस कर्मयोग के अभ्यास में किसी भी आरम्भ किये गये परिश्रम का, योगयुक्त बुद्धि से किये कर्म का नाश नहीं होता और न ही इसका कोई विपरीत फल प्राप्त होता है, अपितु इस स्थिर योगस्थ बुद्धि से यदि कर्म को कर्मयोग में परिवर्तित किया जाये, तो इसका थोड़ा-सा भी अनुष्ठान महान संसार-भय से भी हमारी रक्षा करता है।

अत: एक बार लक्ष्य निश्चित कर यदि हम अपनी शक्ति को फल की दुश्चिन्ता में क्षय किये बिना स्थिरता, धैर्य, प्रेम और समर्पण से कार्य करते हैं, तो जीवन में इसके उत्तम परिणाम मिलेंगे। इसीलिए स्वामी विवेकानन्द कहते हैं, ''हम जितना ही शान्त होंगे और जितना ही हमारा चित्त स्थिर होगा, जितना हम अपने कार्य से प्रेम करेंगे, हमारा कर्म उतना ही उत्तम होगा।'' अत: तनावमुक्त होकर प्रेम और एकाग्र मन से अपनी समस्त ऊर्जा को कार्य में लगाने से हमें अवश्य ही श्रेष्ठतम फल प्राप्त होगा। ○○○

मेरे जीवन की कुछ स्मृतियाँ (४)

स्वामी अखण्डानन्द

(स्वामी अखण्डानन्द जी महाराज श्रीरामकृष्ण देव के शिष्य थे। परिव्राजक के रूप में उन्होंने हिमालय इत्यादि भारत के कई क्षेत्रों के अलावा तत्कालीन दुर्लंघ्य माने जाने वाले तिब्बत की यात्राएँ भी की थीं। उनके यात्रा-वृत्तान्त तथा अन्य संस्मरण बंगला पुस्तक 'स्मृति कथा' में प्रकाशित हुए हैं, जिनका अनुवाद विवेक ज्योति के पूर्व सम्पादक स्वामी विदेहात्मानन्द जी ने किया है। – सं.)

उनकी अपूर्व शिक्षा-प्रणाली

इसी प्रकार एक अन्य समय मैं ठाकुर के पास जाकर रात को वहीं ठहर गया । उन दिनों हरीश कुण्डू रात में ठाकुर के पास ही रहता था । ठाकुर सबको ध्यान करने बैठा देते । ध्यान के समय सभी लड़के अपने-अपने इष्टदेव के साथ बातें करते हुए कभी हँसते, तो कभी रोने लगते । उस विमल आनन्द को भाषा के द्वारा प्रकट नहीं किया जा सकता ।

लौटते ही वे पूछते, "क्यों रे, ध्यान करते समय, प्रार्थना करते समय क्या तेरी आँखों में आँसू आए थे?" एक दिन मैं बोला, "हाँ, आया था ।" सुनकर उनके आनन्द की सीमा न रही । वे बोले, "दु:ख के अश्रु नेत्र के (नाक की ओर के) कोने से निकलते हैं, जबकि प्रेमाश्रु नेत्र के छोरों से बहते हैं ।"

"प्रार्थना कैसे करनी चाहिए, जानता है?" इतना कहकर वे एक छोटे बच्चे के समान हाथ-पाँव पटकते तथा रोते हुए कहने लगे, "माँ, मुझे ज्ञान दे, भक्ति दे । मैं और कुछ भी नहीं चाहता माँ ! मैं अब तुम्हें छोड़कर रह नहीं पा रहा हूँ माँ !" उस समय उनकी धोती खुल गयी थी । तब उनकी उस मूर्ति को देखकर मुझे लगा मानो वे सचमुच ही एक शिशु हों ! वे अश्रुधारा से अपने सीने को भिगोते हुए गहरी समाधि में डूब गये ।

उसे देखकर मेरे मन में दृढ़ धारणा हुई कि ठाकुर ने मुझे दिखाने के लिये ही इस प्रकार प्रार्थना की है ।

स्वप्न के विषय में वे कहते, "स्वप्न में यदि कोई आकर एक-एक कर दीपक जलाकर चला जाय, या फिर आग लग जाय, या कोई स्वयं अपना ही नाम लेकर पुकारे – तो यह सब बहुत अच्छा है । इनमें से अन्तिम स्वप्न सबसे उत्तम है ।"

दिगम्बर बाउल

बातचीत के दौरान एक बार दिगम्बर बाउल की बात उठी । वे ठाकुर के समकालीन थे । मैंने उन्हें अनेकों बार देखा है । वे बँगला, हिन्दी तथा फारसी में दोहे बोलने के बाद काठी बजाकर अन्त में 'हरि हरि बोल' कहा करते थे । वे मुहल्ले-मुहल्ले में घूमा करते थे । ठाकुर बताते कि वे हरिनाम में सिद्ध थे । उनमें विभूति थी ।

पाथुरियाघाट के दुर्गापद घोष उनके बड़े अनुरागी थे । अपनी अन्तिम आयु में वे बागबाजार में (मायेर बाड़ी के पास के) एक बहुत बड़े मकान में रहा करते थे । दुर्गापद घोष उन दिनों उनकी सेवा में ढेर सारे रुपये खर्च किया करते थे । दोल-उत्सव (होली) के समय उन्हें बड़े धूमधाम के साथ झूले पर चढ़ाया गया था और उन्हें अबीर-गुलाल से रँग दिया गया था ।

इसीलिये एक बार मैं स्वामीजी के साथ उन्हें देखने गया । जाकर देखा कि बिस्तर पर लेटे हुए हैं । उनके तख्त के नीचे एक बड़े मुखवाला मिट्टी का बर्तन रखा हुआ था । हमने कहा कि हम ठाकुर के पास से आये हैं । तब वे उठकर बैठ गये । बातें करते-करते ही सहसा उन्होंने उस बर्तन को उठाकर उसमें पेशाब किया । वे दिगम्बर थे । फिर थोड़ी देर बार वे उस बर्तन को उठाकर गटागट पी गये । हम बोले, "महाराज, यह क्या कर रहे हैं !" वे बोले, "और क्या जी ! हैजा हुआ था । सो जितना निकला था, सब फिर वहीं (पेट में) डाल दिया गया । मेरा मत है कि नौ द्वारों से जो निकलता है, वह सब फिर वहीं डाल देना चाहिये ।" वे कर्ताभजा सम्प्रदाय से जुड़े थे ।

उन दिनों जो लोग ठाकुर के पास जाते, वे जब अर्ध-निमीलित नेत्रों के साथ ध्यान में बैठते, तो उनकी इष्टदेव के साथ हँसी, बातचीत आदि देखकर शरीर रोमांचित हो उठता । उनके प्राय: सभी अन्तरंग शिष्यों में अष्ट सात्त्विक विकारों में से कुछ-न-कुछ अवश्य दिख जाता था । एकमात्र स्वामीजी ही इसे नियंत्रित कर पाते थे । कोई भी भाव होने

पर वे आसानी से विचलित नहीं होते थे ।

आचरण द्वारा शिक्षा

एक अन्य दिन की बात है । उस दिन रात के समय उनके पास ही ठहर गया था । सुबह उठकर जो दो-चार लोग बड़े प्रेम के साथ वहाँ चले आते, वे उनके साथ बातें करते ।

मैं विष्णु-मन्दिर, काली-मन्दिर आदि सभी स्थानों पर दर्शन कर रहा था, द्वादश शिव-मन्दिर में 'नम: शिवाय शान्ताय' कह-कहकर एक-एक में प्रणाम कर रहा था । इसके बाद घूम-फिरकर जब मैं उनके पास आया, तो वे मुझसे बोले, ''चल, मुझे चाँदनी घाट पर स्नान करा ला ।'' मुझसे कमण्डलु ले चलने को कहा । तब तक मेरा स्नान हो चुका था । मैं उन दिनों एक वस्त्र में ही कई बार स्नान किया करता था । मैं कमण्डलु लेकर चल पड़ा ।

घाट पर पहुँचकर देखा कि वहाँ काली-मन्दिर के खजांची एक पाँव गंगाजल में और दूसरा पाँव घाट की सीढ़ी पर रखकर उसे घिस रहे हैं । ठाकुर गये, परन्तु उस ओर उनका ध्यान नहीं गया ।

ठाकुर धीरे-धीरे चाँदनी के घाट पर जाकर उत्तर की ओर चलते हुए क्रमश: कमर तक जल में प्रविष्ट हो गये । वे थोड़ा-थोड़ा जल लेकर अपने सिर पर छिड़कने लगे; फिर मुख में जल लेकर कुल्ला किया, परन्तु अपने दाहिने हाथ के ऊपर । उस दिन उनके 'ब्रह्मवारि' कहने तथा उनका स्नान देखकर भलीभाँति समझ में आ गया कि उन्होंने बड़े कष्टपूर्वक ही जल में पाँव डाले हैं ।

इधर एक अन्य वृद्ध ब्राह्मण भी वहाँ उपस्थित थे । देखकर लगता था कि वे किसी गाँव से आये हैं । घाट पर आते ही उन्होंने खजांची से पूछा, ''क्या आप ही यहाँ के खजांची है?'' उनके ''हाँ'' कहते ही वे ब्राह्मण सीढ़ियों पर बैठ गये और पूछने लगे, ''अच्छा, यहाँ तालाब में कितनी मछलियाँ होती हैं? बगीचे में जो फल-मूल होते हैं, उन्हें बेचकर कितने रुपये आते हैं?'' यह सब सुनकर ठाकुर के चेहरे पर खिन्नता के भाव उभर आये और उन्होंने तिरछी दृष्टि से उस ओर देखा ।

स्नान हो जाने के बाद मैं ठाकुर को फिर उनके कमरे में ले आया, उनके वस्त्रों पर गंगाजल छिड़का । कपड़े पहनकर उन्होंने मन्दिरों में जाकर प्रणाम आदि किया और लौटकर प्रसादी फल-मूल खाया ।

इसके बाद ही बाहर कोई व्यक्ति आकर पैसे माँगने लगा । ठाकुर ने मुझे बुलाया और कमरे के उत्तर-पश्चिमी कोने में बनी ताक पर रखे चार पैसों को दिखाते हुए बोले, ''जा, उन चार पैसों को ले जाकर उस आदमी को दे आ ।'' पैसे दे आने के बाद वे मुझसे बोले, ''गंगाजल से हाथ धो ले ।'' मैंने गंगाजल के घड़े से पानी निकालकर हाथ धोया । इसके बाद ठाकुर ने मुझे कालीघाट की माँ-काली के चित्रपट के पास ले जाकर काफी देर तक 'हरिबोल, हरिबोल' कहते हुए मुझसे हाथ झड़वाया और स्वयं भी काफी देर तक हाथ को झाड़ा ।

इस घटना के द्वारा उन्होंने मेरे मन में चिरकाल के लिये यह बात बैठा दी कि रुपया-पैसा कूड़े-कचरे से भी अधिक घृण्य वस्तु है । इसके बाद मैंने चौदह वर्षों तक भ्रमण किया, परन्तु कहीं भी पैसों का स्पर्श नहीं किया । अब भी मेरे मन में धन-दौलत के प्रति जो उदासीनता का भाव है, यह उसी घटना के फलस्वरूप है । अब मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि उन्होंने मेरी शिक्षा के लिये ही इतना सब किया था । जीवों के कल्याण हेतु ही वे देह धारण करके आये थे । इसीलिये उन्होंने हम लोगों के लिये इतना सब किया ।

इसके बाद प्रसादी फल-मूल ग्रहण करने के उपरान्त वे थोड़ा-सा हुक्का पी रहे थे, तभी गंगाघाट पर दिखा हुआ वह ब्राह्मण ठाकुर के कमरे के पास आ पहुँचा और पूछने लगा, ''क्या यहाँ हरीश है – हरीश कुण्डू?'' ठाकुर ने उत्तर देना तो दूर रहा, बल्कि कहा, ''देखो, तुम ब्राह्मण हो । तुम्हारे जीवन का तीन भाग बीत चुका है, एक भाग बचा है और यह गंगाजी का तट है । यहाँ आकर भी तुमसे अपने इष्टदेव का स्मरण-मनन नहीं होता? और तुम यही सब पता लगाते फिर रहे हो कि कालीबाड़ी के तालाब में कितनी मछलियाँ होती हैं, बगीचे में कितनी आम-लीचियाँ होती हैं और उन्हें बेचकर कितने रुपये मिलते हैं? धिक्कार है तुम्हें !''

ब्राह्मण को पश्चात्ताप होना तो दूर, बल्कि वह नाराजगी का भाव लिये वहाँ से चला गया । ठाकुर ने मुझसे उस स्थान पर थोड़ा-सा गंगाजल छिड़कने को कहा ।

ठाकुर कहीं भी जाने के लिये वराहनगर के बेनीपाल की द्वितीय श्रेणी की घोड़ेगाड़ी का ही उपयोग किया करते

थे । इसका कारण यह था कि उसके घोड़े बलिष्ठ तथा अच्छे थे । घोड़ों की पीठ पर चाबुक मारते ही ठाकुर बेचैन हो उठते । कहते, ''मुझे मार रहा है ।'' इसीलिये बेनीपाल जब सुनते कि परमहंस देव को ले जाना है, तो अपने सबसे अच्छे घोड़े ही भेजा करते, ताकि उन्हें मारना न पड़े, जो थोड़ा-सा एँड़ लगाते ही दौड़ने लगते ।

एक दिन बेनीपाल की गाड़ी दक्षिणेश्वर आयी । ठाकुर उसमें बैठे । मैं तथा लाटू भी उनके साथ बैठ गये । बागबाजार स्ट्रीट में जाकर उन्होंने गाड़ी खड़ी करवायी और मुझसे बोले, ''क्यों रे, तू जरा नारायण को बुलाकर ला सकता है?'' उन दिनों नारायण नाम का एक बालक ठाकुर के पास आया-जाया करता था । बागबाजार स्ट्रीट में उतरकर मैं उसे बुला लाया । ठाकुर ने उसके साथ गाड़ी में ही बातचीत की । पूछा कि वह बहुत दिनों से दक्षिणेश्वर क्यों नहीं गया और उसे वहाँ आने को कहा ।

इसके बाद हम लोग श्यामपुकुर में नेपाल के राजदूत विश्वनाथ उपाध्याय के घर गये । ठाकुर उन्हें 'कप्तान' कहा करते थे । उनके द्वार पर गाड़ी खड़ी होने के बाद हम तीनों ऊपर गये । उनके घर के सब लोगों ने आकर ठाकुर को प्रणाम किया । ठाकुर ने वहाँ थोड़ा-सा बर्फ का पानी पीया । उन्हें बर्फ बड़ी प्रिय थी ।

वहाँ से हम लोग बलराम बाबू के घर गये । फिर वहाँ से दक्षिणेश्वर लौटे । ठाकुर रात को दक्षिणेश्वर के सिवाय कहीं भी नहीं रहते थे । कलकत्ते में बलराम बाबू के घर शायद एक-दो रात रहे थे । स्वामीजी के मुख से सुना है कि ठाकुर बलराम बाबू के घर के अतिरिक्त कभी भी अन्न ग्रहण नहीं करते थे । कहते, ''उसका अन्न शुद्ध है ।'' इसीलिये स्वामीजी कहते, ''देखा है न, बड़े-बड़े महापुरुष कलकत्ते में कभी रात्रिवास नहीं कर सकते?''

उन दिनों प्राय: सभी सम्प्रदायों के महापुरुषों में से कोई-न-कोई दक्षिणेश्वर के कालीबाड़ी में जाकर रहा करते थे और ठाकुर का संग पाकर तथा उपदेश सुनकर धन्य हो जाते थे ।

एक बार एक महापुरुष (जटाधारी) – हमारे ही सम्प्रदाय के नागा – ने कुछ दिनों तक दक्षिणेश्वर के कोठीघर में निवास किया था । मेरे दक्षिणेश्वर जाने पर ठाकुर ने मुझे बताया कि कश्मीर से आये हुए एक महापुरुष उस कोठीघर में ठहरे हैं । मैं उनके पास गया । प्रणाम करके थोड़ी देर बैठा रहा । लम्बी जटाजूट तथा दाढ़ियों वाले वे महापुरुष अत्यन्त गम्भीर स्वभाव के थे, ज्यादा कुछ बोलते नहीं थे । मेरे पूछने पर उन्होंने एक-दो प्रश्नों के उत्तर मात्र ही दिये । वैसे कोई साधु-महापुरुष दक्षिणेश्वर में आने पर ठाकुर हम लोगों को उनका दर्शन कर आने को कहते थे ।

एक अन्य शनिवार का दिन था । मैं पूर्वाह्न में ठाकुर के पास गया था । लगभग दो बजे ठाकुर ने मुझसे कहा, ''मेरे लिये थोड़ी सी बर्फ ले आ ।''

मैं कुछ पैसे लेकर दक्षिणेश्वर से निकलकर ठाकुर के लिये बर्फ लाने आलमबाजार की ओर जा रहा था । उन दिनों बर्फ एक-दो पैसे में सेर भर मिलती थी । रास्ते में सोच रहा था कि बर्फ लिये बिना लौटूँगा नहीं । परन्तु बड़े आश्चर्य की बात यह हुई की करीब पाँच मिनट चलने के बाद ही मैंने देखा कि एक बर्फवाला दक्षिणेश्वर की ओर ही चला आ रहा है । उसे देखकर मेरे आनन्द की सीमा न रही ।

इसके बाद मैं ज्योंही बर्फ लेकर उनके कमरे में पहुँचा, वे बोले, ''क्यों रे, मिल गई?'' मेरे बर्फ दिखाते ही वे बड़े खुश हुए । मैंने कहा, ''यही देखिये न, मैंने सोचा था कि जहाँ से भी मिलेगी, ले आऊँगा । सो बाहर निकलते ही बर्फ मिल गयी, मानो आप ही के लिए आ रही थी ।''

उन्होंने बर्फ डालकर पानी पीया । रात को मैं वहीं ठहरा । अगले दिन सुबह थोड़ा दिन उठते ही मैंने देखा कि कोठीघर की ओर थोड़ी चहल-पहल हो रही है । बाद में सुना कि मथुर बाबू के पुत्र त्रैलोक्य बाबू कुछ लोगों के साथ आये हुए हैं ।

त्रैलोक्य बाबू को देखा । उनके शरीर का रंग काफी गोरा था, पीठ पर बाल थे और काली किनारी की धोती पहने हुए थे, जैसे कि जमींदार लोग हुआ करते हैं । उनके शरीर का रंग ऐसा था, मानो दूध में लालिमा घुली हो ।

परन्तु जो रानी रासमणि तथा मथुर बाबू ठाकुर के इतने भक्त थे, उन्हीं के वंशधर होकर भी ठाकुर को एक बार प्रणाम तक करने नहीं आते, यही सोचकर मुझे मन-ही-मन बड़ा दु:ख तथा क्षोभ हुआ ।

जैसा कि जमींदार लोग घूमने जाया करते हैं, उसी प्रकार त्रैलोक्य बाबू अपने मित्रों तथा मुसाहिबों को साथ लिये हर शनिवार को कोठीघर में आकर ठहरा करते थे ।

(क्रमश:)

श्रीरामकृष्ण और गौरी माँ

स्वामी तन्निष्ठानन्द

रामकृष्ण मठ, नागपुर

(अनुवाद : मीनल जोशी, नागपुर)

गौरी माँ का पूर्वाश्रम का नाम मृडानी था। उनका जन्म सम्भवत: १८५७ में हुआ था। उनके माता-पिता धार्मिक प्रवृत्ति के थे। मृडानी को बचपन से ही धार्मिक-विषयों में रुचि थी। वे स्वयं ही देव-पूजा आदि करती रहती थीं। मृडानी में बचपन से ही वैराग्यवृत्ति थी।

एक बार एक अपरिचित बृजवासी नारी मृडानी के घर अतिथि बनकर आयी। मृडानी से उसकी दृढ़ मित्रता हो गई। वह ब्रजवासी महिला दामोदर नामक नारायण शिला की साक्षात् ईश्वर रूप में पूजा करती थी। मृडानी को उस नारायण शिला के प्रति बहुत अनुराग हो गया। वहाँ से जाते समय उस ब्रजवासिनी ने वह शिला मृडानी को सौंप दी। तब से मृडानी उसी शिला की पूजा करने लगी।

मृडानी ने ईश्वर को ही अपना जीवन समर्पण करने का संकल्प लिया । वह कहती कि ईश्वर के सिवाय वह अन्य किसी को पति के रूप में वरण नहीं करेगी। जब विवाह के लिये परिजनों ने आग्रह किया, तब वह घर से भाग गयी। किन्तु सगे-सम्बन्धियों ने उसे पकड़कर घर लाया और नजरबंद कर दिया। एक बार मृडानी परिजनों के साथ गंगासागर की तीर्थयात्रा पर गयी और सुयोग पाकर भाग गई। वह साधु-साध्वियों के दल के साथ हरिद्वार पहुँची और ऋषिकेश जाकर तपस्या करने लगी। धीरे-धीरे साधु समाज में 'गौरीमाई' के नाम से प्रसिद्ध हो गईं।

गौरी माई गेरुआ वस्त्र पहनतीं और गले में दामोदर शिला धारण कर तीर्थाटन करतीं। उनकी झोली में काली माँ और चैतन्यदेव का चित्र, दुर्गासप्तशती और भागवत ग्रन्थ होते थे। वे अनेक तीर्थों, चारधाम-यात्रा करते हुये वृन्दावन पहुँचीं।

उस समय वृन्दावन में श्रीरामकृष्ण देव के शिष्य बलराम बसु थे। उन्होंने गौरी माई से कहा, ''दीदी, दक्षिणेश्वर में मुझे एक महापुरुष के दर्शन हुए हैं। उनका सनक-सनातन जैसा भाव है। भगवत्प्रसंग करते-करते उन्हें समाधि लगती है। आप एक बार अवश्य उनके दर्शन कीजिए।'' गौरी माँ ने ये सब बातें सुनीं। वे श्रीक्षेत्र जगन्नाथपुरी चली गयीं। वहाँ एक वृद्ध गृहस्थ ने उन्हें बताया, ''माई, दक्षिणेश्वर में एक अलौकिक पुरुष के दर्शन करके आया हूँ। उनका रूप अद्भुत है। वे ज्ञान से पूर्ण हैं और हमेशा भगवत् प्रेम में लीन रहते हैं। उन्हें बारम्बार समाधि लगती है।'' जगन्नाथपुरी से लौटने के बाद गौरी माँ ने बलराम बाबू के घर निवास किया। बलराम बाबू ने उनसे पुन: दक्षिणेश्वर में साधु-दर्शन को चलने की प्रार्थना की। किन्तु अभी भी उन्हें श्रीरामकृष्ण देव के दर्शन की उतनी व्याकुलता नहीं थी। इसलिए गौरी माँ ने हँसते हुए उनसे कहा – ''दादा, जीवन में बहुत सारे साधुओं के दर्शन हुए हैं। अब अन्य किसी साधु-दर्शन की अभिलाषा नहीं है। आपके साधु में अगर शक्ति हो, तो वे मुझे खींच लें। उसके पहले मैं नहीं जाऊँगी।''

एक दिन गौरी माँ जब दामोदर-नारायण शिला को अभिषेक कर मंदिर में भगवान की वेदी पर रख रही थीं, तभी उन्होंने मनुष्य के दो सजीव चरण देखे। शरीर के अन्य अंग नहीं थे। उन्होंने पुन: ध्यान से देखा। पर वह आँखों का भ्रम नहीं था। गौरी माँ ने दामोदर को तुलसीदल अर्पण किया, तो वह उन चरणयुगलों पर जा गिरा। तब गौरी माँ अचेत हो जमीन पर गिर गयीं। बहुत देर तक कुछ भी हलचल न होते देख, बलराम बाबू की पत्नी ने आशंकित हो दरवाजें से झाँककर देखा।

गौरी माँ वहीं बेहोश पड़ी थीं। वे तीन-चार घंटे बाद होश में आयीं, पर बोल नहीं पा रही थीं। उन्हें निरन्तर अनुभव हो रहा था कि कोई उनका हृदय धागे से बाँधकर खींच रहा है। इसी अवस्था में दिन और रात कट गए। भोर होने के पहले ही वे घर से निकलकर बाहर जाने का प्रयास करने लगीं। द्वारपाल ने पूछा – ''माई, कहाँ जाएँगी?'' गौरी माँ ने कोई उत्तर नहीं दिया। इतने में बलराम बाबू ने आकर पूछा, ''दीदी, दक्षिणेश्वर के महापुरुष के पास चलोगी?'' गौरी माँ चुपचाप उनका मुहँ ताकने लगीं। उन्हें कोई सुध नहीं थी। इसी को मौन सहमति समझकर बलराम बाबू ने

गाड़ी बुलाई। अपनी पत्नी और एक-दो महिलाओं के साथ गौरी माँ को लेकर वे दक्षिणेश्वर पहुँचे। भक्तों ने श्रीरामकृष्ण देव के कमरे में जाकर देखा कि दक्षिणेश्वर के महापुरुष कमरे में बैठकर अपनी ही धुन में धागा बेठन में बाँध रहे हैं और गाना गा रहे हैं -

नचाती है, यशोदा इसलिए नीलमणि

छुपाया है रूप कहाँ हे करालवदनी'

फिर एक बार नृत्य कर हे श्यामा जननी।

भक्तों के कमरे में प्रवेश करते ही श्रीरामकृष्ण देव का धागा लपेटना समाप्त हुआ। गौरी माँ को अपनी अव्यक्त वेदना के स्रोत का बोध हुआ। उन्होंने विस्मित हो देखा। वे ही सजीव चरणयुगल ! किन्तु श्रीरामकृष्ण देव को जैसे कुछ पता ही नहीं। उन्होंने बलराम बाबू से गौरी माँ का परिचय पूछा और बहुत देर तक सत्संग किया। विदा होते समय उन्होंने गौरी माँ से कहा, ''फिर आना बेटी।'' यह घटना १८८२-८३ साल की है। तब गौरी माँ की आयु पचीस वर्ष थी।

दूसरे दिन सुबह गौरी माँ ने गंगा स्नान किया। दो पहनने के वस्त्र और दामोदर को छाती से लगाकर अकेली दक्षिणेश्वर पहुँचीं। उन्हें देखकर ठाकुर ने कहा, ''तुम्हारे बारे में ही सोच रहा था।'' गौरी माँ गद्‌गद् होकर अपने जीवन की घटनाएँ कहने लगीं। दामोदर की वेदी पर श्रीरामकृष्ण देव के पादपद्मों के दर्शन का वर्णन करते हुए उन्होंने कहा, ''बाबा, आप यहाँ छिपकर बैठे थे? मैं समझ नहीं सकी।'' ठाकुर ने हँसते हुए कहा, ''नहीं तो, इतना साधन-भजन कैसे होता?'' वे उन्हें नौबतखाने में श्रीमाँ सारदा देवी के पास ले गये और कहा, ''हे ब्रह्ममयी, आपको एक संगिनी चाहिए थी, तो देखो, एक संगिनी आयी है।''

उसके बाद से कुछ दिनों तक गौरी माँ दक्षिणेश्वर में रहीं। किन्तु श्रीमाँ की अनुपस्थिति में दक्षिणेश्वर में रहना सम्भव न था। इसलिए बलराम-मंदिर में वापस आकर रहने लगीं। दूर रहने पर उनके मन में श्रीरामकृष्ण देव के दर्शन की इच्छा प्रबल होती थी। गौरी माँ श्रीरामकृष्ण देव के रुचि का व्यजंन बनाकर उन्हें खिलाती थीं तथा मधुर स्वर में भजन सुनाती थीं। इस प्रकार गौरी माँ को ठाकुरजी के सान्निध्य और सेवा का सुयोग मिला।

गौरी माँ का चित्त धीरे-धीरे शान्त हुआ। दामोदर अपने आराध्य देवता के सिंहासन पर श्रीचरणों के अद्‌भुत अलौकिक दर्शन देनेवाली उस रात्रि में कृत्रिम कोप दर्शाते हुए अशरीरी वाणी से पुकारने लगे – ''क्या मेरे खींचकर लाने के बिना नहीं आओगी? आओ, जल्दी आओ। निकट आने से तो परिचय होगा !'' – अनिच्छा से अकल्पनीय रीति से अपने श्रीचरणों में लानेवाले श्रीरामकृष्ण देव कौन हैं? यह पहेली सुलझने लगी। गौरी माँ अलौकिक आनन्द में मग्न हो गयीं। इस आनन्दमय अन्तर्मुखता से उनकी स्मृतियाँ जाग्रत हुईं और वे सिहर उठीं।

कलकत्ता के भवानीपुर नामक इलाके में मृडानी का घर था। अपने भवन के प्रांगण में दस वर्षीय बालिका मृडानी चुपचाप बैठी थी। उसकी आँखों में सपना चमक रहा था। समवयस्क बालक-बालिकाएँ प्रांगण में उधम मचा रहे थे। अपनी ही धुन में मग्न मृडानी की दृष्टि अचानक रास्ते पर पड़ी – एक तेजस्वी पुरुष मार्ग से जा रहे थे। मृडानी को एक ओर स्थिर बैठा देख उन्होंने समीप आकर स्नेहपूर्वक मधुर स्वर से उससे पूछा, ''सारे बच्चे खेल रहे हैं और तुम क्यों अकेली चुपचाप बैठी हो?'' बालिका ने उत्तर दिया, ''मुझे ऐसे खेल पसन्द नहीं हैं।'' मृडानी ने अनमना-सा उत्तर तो दिया, पर पता नहीं, क्यों उस पुरुष में उसे अपनत्व का बोध हुआ, जैसे उस व्यक्ति से जन्म-जन्मान्तर का परिचय हो। अकल्पनीय अभिभूत हो मृडानी ने उस पथिक को प्रणाम किया। उस तेजस्वी व्यक्ति ने बालिका के सिर पर हाथ रखकर आशीर्वाद दिया – ''कृष्णभक्ति प्राप्त हो।'' वही स्वर, वही मुखमंडल, वही व्यक्ति आज पन्द्रह वर्षों बाद मृडानी (गौरी माँ) को श्रीरामकृष्ण के रूप में मिले !

इस घटना के कुछ दिन बाद वह कलकत्ता के वराहनगर क्षेत्र में रहनेवाली अपनी मौसी के यहाँ गयी। वहाँ उसे पता चला कि कोई एक दिव्य पुरुष (श्रीरामकृष्ण देव) पास में ही रहते हैं। वह उनकी खोज में अकेले ही निकल पड़ी। पूछते-पूछते वह वहाँ पहुँची, जहाँ उनकी कुटिया थी। उसने धीरे से कुटिया में प्रवेश किया और देखा तो सामने वही पूर्वपरिचित तेजस्वी पथिक। वे दीप्तिमान पुरुष नेत्र बन्द कर गम्भीर ध्यान में मग्न थे। कुछ समय बाद कान्तिमान पुरुष ने आँखें खोलीं। बालिका ने उनके श्रीचरणों में साष्टांग प्रणाम किया। बालिका को देखकर उस दिव्य महापुरुष ने कहा, ''तुम आ गयी।'' आवेग भरे कंठ से मृडानी ने अपनी अभिलाषा निवेदित की।

उस दिन पास के ही एक ब्राह्मण परिवार में मृडानी के रहने की व्यवस्था की गयी। दूसरे दिन सुबह गंगा स्नान के बाद मृडानी की मंत्रदीक्षा हुई। वह रासपूर्णिमा का दिन था। इधर घर के लोग बालिका को खोजने लगे। उन्हें बालिका का पता चला। जब रिश्तेदार उसे लेने आये, तब उस महापुरुष ने उनसे कहा, ''यह छोटी-सी लड़की है। इस पर नाराज मत होइये। पक्षी को पकड़कर रखना कठिन है।''

बालिका मृडानी दुविधा में पड़कर एक बार रिश्तेदारों की ओर, तो एक बार उनकी ओर देखने लगी। इस पर दिव्य पुरुष श्रीरामकृष्ण देव ने मुस्कुरा कर मृडानी से कहा, ''बेटी, अब जाओ। हमारी भेंट फिर से होगी, गंगा किनारे।'' १५ वर्षों बाद अकल्पनीय रूप से गुरु-शिष्या की भेंट गंगा किनारे दक्षिणेश्वर में हुई।

दक्षिणेश्वर में निवास करते हुए एक दिन ठाकुर ने गौरी माँ को संन्यासी का गेरुआ वस्त्र प्रदान किया और उनका मार्गदर्शन किया। श्रीरामकृष्ण देव ने स्वयं होमाग्नि में बिल्व दल की आहुति दी और 'गौरी आनन्द' नाम दिया। किन्तु वे उन्हें गौरी या गौरदासी कहते थे। ठाकुर कहते थे, ''यह ब्रजधाम की गोपी है। इसका गोपीभाव है - यह कृपासिद्धगोपी है।'' गौरी माँ जैसे कीर्तनादि में निपुण थीं, वैसे ही नृत्यकला में भी उनका असाधारण कौशल था। ठाकुर उनका नृत्य देखकर समाधिस्थ हो जाते थे। वे गौरी माँ की तेजस्विता, कर्मनिष्ठता, साहस और अन्याय का प्रतिरोध करने का भाव देखकर उन्हें जगन्माता की अष्टसखियों में से एक मानते थे।

भैरवी ब्राह्मणी की तरह गौरी माँ ठाकुर में गौर-निताई को प्रत्यक्ष देखती थीं। एक दिन इसी भाव में वे समाधिस्थ हो गयीं। उनकी समाधि भंग न होते देख श्रीमाँ सारदा देवी अत्यन्त व्याकुल हो गयीं। अन्त में ठाकुर ने वहाँ जाकर गौरी माँ के सिर और छाती पर जप किया। तब कहीं उनकी समाधि भंग हुई। गौरी माँ ठाकुर के चरण पकड़कर अश्रुपूर्ण नयनों से कहने लगीं, ''ठाकुर, मुझे राधा के रंग में रंगा हुआ मग्न श्रीकृष्ण ला दीजिए।'' ऐसे कहते-कहते अविरल अश्रुधाराओं के साथ धरती पर लोटने लगीं।

एक दिन गौरी माँ ने श्रीरामकृष्ण देव को पकवान खिलाने की इच्छा से बलराम बाबू के घर बड़ी श्रद्धा-भक्ति से व्यञ्जन बनाए। वे दक्षिणेश्वर जाने के लिये प्रस्तुत हुईं। तभी एक विशिष्ट व्यक्ति ने उनसे प्रसाद भिक्षा की याचना की। तब उन्होंने तुरन्त बचे अन्न से थोड़ा प्रसाद उस व्यक्ति को दिया और शीघ्र ही दक्षिणेश्वर पहुँचीं। ठाकुर अपने कमरे में बैठे थे और भक्तवृन्द उनके वचनामृत का पान कर रहे थे। गौरी माँ के कमरे में प्रवेश करते ही ठाकुर नाक-भौं सिकोड़ने लगे। उनका यह भाव देखकर गौरी माँ और अन्य भक्त चिन्तित हो गये। यह देखकर श्रीरामकृष्ण देव ने कहा, ''गौरदासी, आज यह अन्न मैं नहीं ग्रहण कर सकूँगा। क्योंकि यह अन्न तुमने मेरे पूर्व किसी दूसरे को दिया है। इसे लोगों में बाँट दो।'' गौरी माँ को अपनी भूल समझ में आ गयी और वे रोने लगीं। ठाकुर गौरी माँ को सांत्वना देने लगे।

जैसे श्रीगौरांग महाप्रभु भक्तों के साथ महाभाव में मत्त होते थे, वैसे ही श्रीरामकृष्ण अवतार में देखने की इच्छा गौरी माँ को हुई। किन्तु इसे उन्होंने मन में ही रखा।

कुछ दिनों बाद एक रविवार को सभी नये-पुराने भक्त दक्षिणेश्वर में एकत्र हुए थे। गौरी माँ श्रीरामकृष्ण देव की सेवा में खिचड़ी एवं कुछ व्यञ्जन बना रही थीं। इधर भक्तवृंद ठाकुर के साथ बैठकर वचनामृत पान कर रहे थे। सभी आनन्द विभोर थे। तभी गौरी माँ ने आकर श्रीठाकुर के सामने भोजन की थाली रखी। प्रसन्नचित्त से भोजन करते-करते ठाकुर भक्तों को गौरी माँ के भक्ति और वैराग्य की बातें बताने लगे। सुनते ही गौरी माँ को भावावेश हुआ। श्री ठाकुर भी महाभाव के आवेश में खड़े हो गये। एक क्षण में वह स्थान महाभाव की बाढ़ में डूब गया। भक्तवृन्द भावावेश में गिरने-लोटने लगे। उच्च स्वर में 'जय श्रीरामकृष्ण' कहने लगे। भावावेश में सब की बाह्य चेतना लुप्त हो गयी। कुछ समय बाद श्रीरामकृष्ण देव ने सबको स्पर्श किया। भक्त प्रकृतिस्थ हुए। सभी नि:स्तब्ध थे ! बाद में सबने बिना भेद-भाव के उस थाली से आनन्द से प्रसाद ग्रहण किया।

गौरी माँ ठाकुर को पूर्णावतार और श्रीमाँ को साक्षात् भगवती मानती थीं। यदि कोई इससे भिन्न कहता, तो वे दुखी हो जातीं। एक बार सबके सामने उन्होंने कहा, ''श्रीरामकृष्ण और श्रीगौरांग, इन दोनों में भेद नहीं है।'' श्रोताओं में से एक ने आपत्ति उठाते हुए कहा, ''मनुष्य और देव एक नहीं हो सकते। सुनते ही गौरी माँ ने खड़े होकर क्रोधावेश से कहा, ''जो राम जो कृष्ण, वही अभी रामकृष्ण हैं'' और वहाँ से चली गयीं।

एक दिन ठाकुर ने गौरी माँ को पूछा, ''बताओ, मैं कौन हूँ? मेरे प्रति तुम्हारी क्या धारणा है? गौरी माँ ने तुरन्त बिना

झिझक उत्तर दिया, ''आप कौन हो सकते हैं? आप वही हैं।'' ऐसा कहकर उन्होंने श्रीमद्भागवत् का एक चरण गाया – ''**एते चांशकलाः पुंसः कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्**।'' अर्थात् श्रीकृष्ण ही स्वयं भगवान हैं और शेष अवतारांश या विभूति-विशेष हैं।'' यह उत्तर सुनकर ठाकुर हँसते हुए भक्तों से कहने लगे, ''देखो, वह कह रही है, मैं वहीं हूँ।''

गौरी माँ बहुत निष्ठावान थीं। वे धार्मिक प्रथाओं का ठीक वैसा ही पालन करती थीं। एक बार ठाकुर रामनवमी के दिन जलपान कर रहे थे। उन्होंने थोड़ी मिठाई खाकर शेष भाग गौरी माँ को दिया। गौरी माँ ने भक्ति-भाव से ग्रहण किया। ठाकुर ने मुस्कुराते हुए कहा, ''अरे, आज तो रामनवमी का उपवास है।'' गौरी माँ ने सहज भाव से कहा, ''आपके सम्बन्ध में मुझे कोई विधि-निषेध नहीं है।'' इस प्रकार ठाकुर के कारण उनका धार्मिक प्रथाओं का कठोरता से पालन करना कम हो गया।

एक बार दक्षिणेश्वर में गौरी माँ भगवान की पूजा के लिए बकुल के फूल तोड़ रही थीं। श्रीरामकृष्ण देव वहाँ आये और बाँयीं हाथ से बकुल की एक डाल पकड़कर खड़े रहे। उनके दाहिने हाथ में पानी से भरा एक पात्र था। उस पात्र से पानी डालते-डालते श्रीरामकृष्ण देव ने गौरी माँ को कहा, ''देखो गौरी, मैं पानी उड़ेलता हूँ, तुम मिट्टी मिलाओ।'' चौंककर गौरी माँ ने कहा, ''यहाँ मिट्टी कहाँ है कि मैं उसे सानूँ? यहाँ तो कंकड़-ही-कंकड़ है।'' ठाकुर ने हँसते हुए कहा, ''मैं क्या कह रहा हूँ और तुम क्या समझी। इस देश की स्त्रियों को बहुत कष्ट है। तुम्हें उनके लिये काम करना होगा।'' भावना के वशीभूत न होकर गौरी माँ ने गम्भीर चिन्तन किया और एक दिन ठाकुर से कहा, ''संसारी लोगों के साथ मेरा मेल नहीं होगा। मुझे कुछ चयनित लड़कियाँ दीजिए। मैं उन्हें हिमालय में ले जाकर उनसे मनुष्य-निर्माण करूँगी।'' ठाकुर ने हाथ हिलाते हुए कहा, ''नहीं रे नहीं। इसी शहर में काम करना होगा। साधन-तपस्या बहुत हो गयी। अब तप से पवित्र हुआ यह जीवन नारियों की सेवा में लगेगा। ठाकुर के वचनानुसार उनकी महासमाधि के बाद गौरी माँ ने १८९५ में श्रीसारदेश्वरी आश्रम की स्थापना की।

दक्षिणेश्वर में निवास करते हुए ठाकुर गौरी माँ के मन में सेवादर्श के भाव जगाने लगे। समय-समय पर वे गौरी माँ को बलराम बाबू के घर जाकर महिलाओं से मिलने को कहते। वे कहते, ''नारियों को भगवान का नाम सुनाने से उनमें सहज ही भक्ति उद्दीपित होती है।'' कभी-कभी गौरी माँ बलराम बाबू के घर जाकर महिलाओं को ठाकुरजी के उपदेश सुनाती थीं। एक दिन ठाकुर ने गौरी माँ से कहा, ''चलो, यदु मल्लिक के घर चलेंगे।'' गौरी माँ और ठाकुर उनके यहाँ पहुँचे। उन्होंने देखा कि कलकत्ता की अनेक महिलाएँ घूमने आयी हैं। ठाकुर शिशु के समान उनके बीच में जाकर बैठ गए और कुछ देर उनसे बातें करते हुए, गाते-गाते समाधिस्थ हो गए। गौरी माँ ने भगवन्नाम संकीर्तन शुरू किया। तब ठाकुर स्वाभाविक अवस्था में लौट आये। ठाकुर ने यदु मल्लिक के घर से आकर पुनः गौरी माँ से कहा, ''अरे, वहाँ की महिलाएँ तुमसे मिलना चाहती हैं। एक बार तुम उनके पास जाओ।'' गौरी माँ ने उत्तर दिया ''ये आपके कारण ही है, आप लोगों से मेरी इतनी प्रशंसा क्यों करते हैं?''

एक दिन मणि मल्लिक के घर ब्राह्म समाज की महिलाएँ आई हुई थीं। एक दिन ठाकुर ने बड़ी चतुराई से गौरी माँ को वहाँ भेजा। वहाँ निराकारवाद पर चर्चा हो रही थी। गौरी माँ ने उस दिन साकारवाद-निराकारवाद पर अच्छा तर्क किया। तब से उनमें से कई महिलाएँ ठाकुर के यहाँ आने लगीं और उनकी भक्ति करने लगीं।

बालक स्वभाव श्रीरामकृष्ण देव और गौरी माँ का सम्बन्ध अद्भुत था। एक दिन ठाकुर के मानसपुत्र (राखाल) स्वामी ब्रह्मानन्द को बहुत भूख लगी। राखाल से भूख की बात सुनकर ठाकुर चिन्तित हुए। अचानक गंगा किनारे जाकर जोर-जोर से बुलाने लगे, ''ओ गौरदासी जल्दी आओ, मेरे राखाल को बहुत भूख लगी है।'' गौरी माँ कहाँ हैं, किसी को पता नहीं था। पर थोड़ी देर बाद अचानक एक नाव वहाँ आयी और नाव से गौरी माँ, बलराम बाबू इत्यादि लोग उतरे। उनके साथ रसगुल्ले का पात्र था। ठाकुर आनन्दित हो राखाल को बुलाने लगे, ''अरे, आ रे आ ! देख ये लोग रसगुल्ले लाये हैं। अब जल्दी खाओ।'' सबके सामने ठाकुर ने राखाल को ऐसा कहा, इसलिए वे क्रोधित हो गए, यह बात ठाकुर के ध्यान में आयी। उन्होंने राखाल से कहा, ''भूख लगी है, यह बात बताने में लज्जा कैसी?'' गौरी माँ को रसगुल्ले देने के लिए कहा। तब जाकर ठाकुर के मन को शान्ति मिली। **(क्रमशः)**

ईशावास्योपनिषद (४)

स्वामी आत्मानन्द

(ब्रह्मलीन स्वामी आत्मानन्दजी महाराज रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम के संस्थापक सचिव थे। उन्होंने यह प्रवचन संगीत कला मन्दिर, कोलकाता में दिया था। – सं.)

तुम कौन हो? तुम तो आमुमन मुख्तार हो, ट्रस्टी हो। हम पढ़ते हैं कि स्वर्गीय माननीय घनश्यामदास जी बिड़ला को बापू ने उपदेश दिया था। वह उपदेश उसी ट्रस्टीशिप का था – तुम ट्रस्टी हो, इसी भाव से यह जो कुछ भी है, इसकी सुरक्षा करो, ईश्वर ने तुम्हें ट्रस्टी के रूप में नियुक्त किया है, यह सम्पदा ईश्वर की ही है। स्वामी विवेकानन्द ने रॉक फेलर को ठीक इसी ट्रस्टीशिप के भाव को बताया था। आपको शायद मैंने यह बात बतायी हो। रॉक फेलर धनी थे, पर उन्होंने सेवाकार्य में अपने अर्थ का नियोजन करना शुरू नहीं किया था। स्वामीजी तब डिट्रायट में थे। एक सज्जन थे, जिनके यहाँ स्वामीजी थे, वे रॉक फेलर के घनिष्ठ मित्र थे। मित्र ने रॉक फेलर से कहा कि देखो, एक अद्भुत भारतीय संन्यासी आये हैं, जिनका इतना नाम हुआ है। वे विश्वधर्म महासभा में चोटी के प्रवक्ता रहे। वे मेरे यहाँ आये हैं, तुम मिलने आओ। पर रॉक फेलर को इसमें कोई रुचि नहीं थी। मालूम नहीं, एक दिन रॉक फेलर को कैसे रुचि आई? सुबह-सुबह उठकर वे बिना बताये मिलने के लिये आ गये। बटलर ने दरवाजा खोला। रॉक फेलर ने बटलर से पूछा, संन्यासी कहाँ हैं? बटलर ने कहा, वे अध्ययन कक्ष में हैं। क्या सूचना दे दूँ? जरूरत नहीं। ले चलो। बटलर रॉक फेलर को स्वामी विवेकानन्द के अध्ययन कक्ष में ले गया। स्वामीजी कुर्सी पर बैठकर कुछ लिख रहे थे। रॉक फेलर आये। स्वामीजी ने उधर भ्रूक्षेप तक नहीं किया। रॉक फेलर को बड़ा खराब लगा। बड़ा दंभी है, मेरी ओर देखता तक नहीं है, ऐसा दिखा रहा है, मानों बहुत तन्मय है। स्वामीजी ने थोड़ी देर में रॉक फेलर के जीवन की उन घटनाओं को बताना शुरू किया, जिन्हें रॉक फेलर को छोड़कर दूसरा कोई व्यक्ति नहीं जानता था। रॉक फेलर को बहुत अचम्भा हुआ। ये व्यक्ति कैसा है? क्या यह जादू जानता है? कैसे यह मेरे जीवन की घटनाओं को बता दे रहा है, जिन्हें मुझे छोड़कर किसी को पता नहीं। स्वामीजी ने यह सब बता करके कहा कि देखो! तुम्हारे पास इतना जो धन है, वह तुम्हारा नहीं है, वह ईश्वर का है। ईश्वर ने तुम्हें दिया है, इसका ठीक-ठीक विनियोजन हो, तुम इसके एक न्यासी हो, ट्रस्टी हो। तुम पर यह भार न्यस्त हुआ है कि यह सब ठीक सेवा में लगना चाहिए। रॉक फेलर ने ऐसी बातें कभी सुनी नहीं थीं और न वे उपदेश सुनने के आदी थे। वे वहाँ से अत्यन्त रोष में बाहर निकल कर चले गये। मित्र ने पूछा कि तुम आये थे, सुना कैसा लगा? संन्यासी कैसे लगे? रॉक फेलर ने कहा - व्यर्थ! ऐसा कह दिया। तीसरे दिन रॉक फेलर अपने को रोक नहीं पाये। वे पहले जैसे ही सुबह बिना बताये आ गये। उनके हाथ में कोई दस्तावेज था। स्वामीजी वैसे ही बैठकर कार्य कर रहे थे। बटलर रॉक फेलर को स्वामीजी के पास ले गया। रॉक फेलर ने सीधे टेबल पर जोरों से दस्तावेज रखते हुए कहा – लो, अब मुझे इसके लिए धन्यवाद दो। स्वामीजी ने निगाह दौड़ाई, देखा कि एक बहुत बड़ी रकम किसी दातव्य संस्थान के लिए उन्होंने दान में देने की घोषणा की थी और दस्तावेज उसी का था। स्वामीजी ने मुस्कुराते हुए उसे उठाया और वापस करते हुए कहा – धन्यवाद तुम मुझे दो, क्योंकि मैंने तुम्हें दृष्टि दी है। तो यह जो धन है, वह किसका है? धन ईश्वर का है और तुम कौन हो? न्यासी हो। प्रभु ने तुम्हें सम्पत्ति दी है, उसका उपयोग करने के लिए, उसका उपयोग करो। यह त्याग का भाव है, इस त्याग के भाव के साथ संसार का भोग करो। कैसे करो? अगले मंत्र में बता रहे हैं –

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः ।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे ।।२।।

– इस संसार में सौ वर्षों तक जीने की इच्छा करो। कर्म में लिप्त न होओ। तुम्हारे लिये अन्य कोई मार्ग नहीं है। कितने साल जीवित रहना चाहोगे? सौ वर्ष? अरे मरते दम तक काम करो, कहाँ भागना चाहते हो? जैसे कहते हैं कि न, अब हम रिटायर होंगे। अरे, कहाँ रिटायर होगे? उपनिषद रिटायर की बात कहती ही नहीं। वह कहती है कि कुर्वन्नेवेह कर्माणि – इस संसार में, इस जीवन में कर्म करते हुए ही, यहाँ 'ही' शब्द से जोर दिया गया है। क्या

करो? जिजीविषेच्छतं समा: – सौ वर्ष तक जीने की इच्छा करो। सौ वर्ष माने यह परम आयु है। जैसे जब वर-वधु प्रदक्षिणा करते हैं, सप्तपदी करते हैं, तो हम कहते हैं न, सौ साल तक जीयें। वेदों में कहा है कि पुरुष की जो परम आयु है, वह सौ वर्ष की है – शतायुर्वै पुरुष:। ऐसा कहा गया है। तुम सौ वर्ष तक जीने की इच्छा करते हुए ही ऐसे कर्म करो, इस ढंग से कर्म करो कि कर्म चिपके नहीं – न कर्म लिप्यते नरे। इसके अतिरिक्त दूसरा कोई उपाय नहीं है, यही उपाय है। तुम नर हो, तुम नेता हो, तुम काम करो। तुम क्यों इस प्रकार कहते हो कि काम नहीं करूँगा? सौ साल तक जीने की इच्छा करो।

यह यहाँ पहले श्लोक में सिद्धान्त कहा गया है। दूसरा श्लोक उसका प्रयोग है। पहला है ज्ञान और दूसरा है कर्म। तो सिद्धान्त और प्रयोग को एक साथ लेकर चलो। यह सिद्धान्त है कि ईश्वर ही सबमें विराजित हैं। इस प्रकार से देखने की यह दृष्टि है कि इस संसार में जो कुछ दिखाई देता है, सबमें ईश्वर ही विराजित हैं, यह संसार ईश्वर का बैठकखाना है, यह जो ज्ञान है, यह ज्ञान ही त्याग है। इस त्याग के द्वारा संसार का उपयोग करो। जो सम्पत्ति तुम्हें मिली है, वह भगवान ने ही तुम्हें दी है, तुम उसके न्यासी हो, ट्रस्टी हो, उसका सदुपयोग करो और सौ वर्ष तक जीने की इच्छा करो। जैसे सैकड़ा मानते हैं न, जैसे नीबू का सैकड़ा मानते हैं, आम का सैकड़ा मानते हैं, गाँव में एक सौ बीस का, रत्तल का सैकड़ा मानते हैं एक सौ बारह का, नाम का सैकड़ा मानते हैं एक सौ आठ का। एक सौ आठ जैसे जप करते हैं, यह सैकड़ा है, उसी प्रकार आयु का सैकड़ा मानते थे एक सौ सोलह वर्ष का। छान्दोग्य उपनिषद में है कि आयु का सैकड़ा माने एक सौ सोलह वर्ष का। चौबीस साल अध्ययन में लगाओ, चवालीस साल कर्मयोग करो और बाकी अड़तालीस साल चिन्तन में। माने जब ६८ साल के हो गये, उसके बाद चिन्तन में। चिन्तन में कर्म भी रहेगा। माने यहाँ पर चिन्तन की प्रमुखता है, पर कर्म गौण नहीं है। कर्म बना रहेगा जीवन में। यह मानों बाँटा गया है, इस प्रकार से सौ वर्ष तक जीने की इच्छा करो, यह यहाँ पर कहा गया। यदि ऐसा नहीं करोगे, सिद्धान्त को यदि तुमने प्रयोग में नहीं उतारा, तो कहते हैं –

असुर्या नाम ते लोका अन्धेन तमसावृता:।
तांस्ते प्रेत्याभिगच्छन्ति ये के चात्महनो जना:।।३।।

ये जो ज्ञान दिया गया है, इस ज्ञान को अपने जीवन में जो नहीं उतारते हैं, वे आत्मघाती हैं और वे लोग मरने के बाद गहरे अंधकार से भरे लोकों में जाते हैं।

आज यहीं तक लें। धीरे-धीरे भाग करके हम उसे देखेंगे। आज हमने देखा शान्ति पाठ । शान्ति पाठ के साथ पहला मंत्र है जहाँ सिद्धान्त की घोषणा है। दूसरे में कहा, इस सिद्धान्त को तुम प्रयोग में, व्यवहार में उतारो। तीसरे में दिखाया कि यदि हमने सिद्धान्त को व्यवहार में नहीं उतारा, तो मनुष्य की दुर्गति होगी। अब कल देखेंगे। आत्मघाती कहाँ है? वह कौन-सा आत्मतत्त्व है, जिसका घात हो जाता है? आत्मतत्त्व का वर्णन यहाँ पाँच श्लोकों में दिया गया है। आज यहीं पर अपनी वाणी को विराम देते हैं। हरि ॐ तत् सत्।

आइये, एक बार पुन: विषयों की पुनरावृत्ति कर लें। ईशावास्योपनिषद पर प्रथम चिन्तन करते हुए कहा गया था कि यह उपनिषद दोनों अर्थों में वेदान्त का अर्थ ध्वनित करता है। वेदान्त शब्द का अर्थ हमने ज्ञान की पराकाष्ठा के रूप में किया था। ईशावास्योपनिषद में ज्ञान की पराकाष्ठा वर्णित है। उसके साथ ही साथ यह शुक्ल यजुर्वेद की शाखा है, जिसके चालीस अध्याय हैं। इस प्रकार से वेदान्त शब्द के दोनों अर्थ ईशावास्योपनिषद पर घटित होते हैं। कल यह भी कहा कि षद् धातु से यह उपनिषद शब्द निकला है। उप और नि ये दो उपसर्ग लगाये गये हैं। षद् धातु के तीन अर्थ भगवान भाष्यकार ने बताये हैं। एक तो विनाश करना, दूसरा प्राप्ति कराना और तीसरा शिथिल करना। अज्ञान का नाश करना, ब्रह्म की प्राप्ति कराना, दुख या बन्धन का शिथिलीकरण करना। यह षद् धातु का अर्थ है। **(क्रमश:)**

सागर से गागर

पं. गिरिमोहन 'गुरु'

करुणा कर करुणाकर से, कर जोर कामना कर के,
आओ करुणासागर के, सागर से गागर भर के।
प्यासों की पर्ण-कुटी में जाकर दे आएँ पानी।
मिल दीनबन्धु जायेंगे, लाँघे दीनों की छानी।।
उनकी आहों को आँकें, आओ अन्तर में झाँकें।
अन्तर्यामी पायेंगी, अपने अन्तर की आँखें।।
माना कि मार्ग नया है, पर मंजिल वही पुरानी।
जिसके कारण ऋषि-मुनियों ने खाक वनों की छानी।।

सारगाछी की स्मृतियाँ (६६)

स्वामी सुहितानन्द

स्वामी प्रेमेशानन्द

(स्वामी सुहितानन्द जी महाराज रामकृष्ण मठ-मिशन के उपाध्यक्ष हैं। महाराजजी जगजननी श्रीमाँ सारदा देवी के शिष्य स्वामी प्रेमेशानन्द जी महाराज के अनन्य निष्ठावान सेवक थे। उन्होंने समय-समय पर महाराजजी के साथ हुए वार्तालापों के कुछ अंश अपनी डायरी में गोपनीय ढंग से लिखकर रखा था, जो साधकों के लिये अत्यन्त उपयोगी है। 'उद्बोधन' बँगला मासिक पत्रिका में यह मई-२०१२ से अनवरत प्रकाशित हो रहा है। पूज्य उपाध्यक्ष महाराज की अनुमति से इसका अनुवाद रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के स्वामी प्रपत्त्यानन्द और वाराणसी के रामकुमार गौड़ ने किया है, जिसे 'विवेक-ज्योति' में क्रमश: प्रकाशित किया जा रहा है। – सं.)

एक ब्रह्मचारी के हाथ में घाव हो गया है। महाराज उनसे कह रहे हैं, "घाव से शरीर अशुद्ध होने पर ठाकुर की पूजा नहीं हो सकती। एक दिन ठाकुर की समाधि अवस्था में नित्यनिरंजन उन्हें सँभालने हेतु गए थे। ठाकुर चौंक कर उठ गए और समाधि टूट गई। नित्यनिरंजन के माथे पर एक घाव था, जिसका आपरेशन हुआ था।"

सेवक – समाज में अनेक प्रकार के लोग दिखाई पड़ते हैं, क्यों?

महाराज – दीर्घकाल तक सत्यवादी, जितेन्द्रिय होने और शौच-सन्तोष का अभ्यास करते-करते ब्राह्मण-वर्ग अत्यन्त सुसंस्कृत हो गया। उसका उद्देश्य ही था – देश की उन्नति कैसे हो, इसका चिन्तन करना और परामर्श देना। इसके बदले में वे बैठे-बैठे भोजन पा जाते, समाज उनके भोजन की व्यवस्था करने लगा। एक दूसरा वर्ग बहुत शक्तिशाली हो गया। वे कहने लगे कि हम देश की रक्षा करेंगे, आघात से समाज की रक्षा करेंगे, ये लोग क्षत्रिय हुए। ये लोग अन्याय का दमन करने लगे, जिसके फलस्वरूप ये समाज से १/६ भाग कर पाने लगे। ये लोग राजा हुए। कृषि, गौरक्षा और व्यापार-वाणिज्य का भार वैश्यों ने ले लिया। इसी प्रकार सुदृढ़ सुगठित समाज निर्मित हो गया। कालान्तर में उसकी मूल भावना नष्ट हो गई। राजा बाहुबल द्वारा अत्याचारी हो गए, ब्राह्मण अनाचारी हो गए और वैश्य दुष्ट-उच्छृंखल हो गए। राम के समय ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य का वर्गीकरण स्पष्टतया स्थापित हो गया था, तभी तो रामराज्य कहा गया। ब्राह्मण, क्षत्रिय कोई जाति तो है नहीं, स्वयं भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं –

चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः।

किसी भी ग्राम में ध्यान से देखने पर पाओगे कि उनमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र अवश्य ही हैं। मोक्ष के मार्ग पर शूद्रों का भी समान अधिकार है -

स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम्।

राजयोग व्यावहारिक ग्रन्थ है। ज्ञानमार्ग, भक्तिमार्ग द्वारा भी मनुष्य ईश्वर की ओर ही जाता है, किन्तु चलने की प्रक्रिया, विज्ञान, नियम ही राजयोग है। योग में मन सध जाने पर ही समझना चाहिए कि ज्ञान, भक्ति ठीक चल रहे हैं, अन्यथा नहीं। फिर ज्ञान, भक्ति, योग तो पृथक्-पृथक् नहीं हैं। योगी को भी आत्मा-परमात्मा का विषय, सम्बन्ध जानना होता है। मन एकाग्र करने के लिये नेति-नेति विचार करना पड़ता है और मन को एकाग्र करने हेतु जो तीव्रता है, वही तो भक्ति है।

ज्ञानी की भी, भक्ति नहीं रहने पर, योग नहीं रहने पर ईश्वर में, रति-मति (निष्ठा) नहीं रह पाती। भक्त यदि ईश्वर और जीव का सम्बन्ध, तत्त्व नहीं जाने, तो फिर वह किसकी भक्ति करेगा? जब ईश्वर में मन लगाना चाहेगा, तभी तो उसके साथ युद्ध होता है।

किन्तु कर्मयोग बहिरंग कार्य है। जब तक मन साधना के लिये तैयार नहीं हो जाता, जब तक निर्वासना नहीं हो जाता, तभी तक कर्म है। वासना समाप्त होते ही 'शम: कारणमुच्यते।' एक प्रसंग में ठाकुर स्वामीजी से कहते हैं, "... तुम इतने बड़े आधार! और तुम्हारे मुख से ऐसी बात! मैंने तो सोचा था कि तुम एक विशाल वट-वृक्ष की तरह बनोगे और तुम्हारी छाया तले हजारों-हजारों लोग आश्रय पाएँगे। ऐसा न होकर तुम तो केवल अपनी ही मुक्ति चाहते हो।" – यह बात स्वामीजी के लिए ही लागू है, उनका मन स्वत: ही समाधिस्थ हो जाता था। उसी जगह यदि हम लोग भी ऐसा कहें कि हम जगत के लिए प्राण समर्पित करेंगे, तो यह हँसी की बात होगी। हममें से कोई यदि सच्चे भाव से ध्यान-जप लेकर रह सके, तो वह अत्यन्त भाग्यवान है, यदि उसमें पाखंड न हो तो। हम लोग तो निम्नतर स्तर के लोग हैं, कर्म छोड़कर रह नहीं पाते। हमें कर्म करना चाहिए। हम लोग कर्म के अधीन हैं और स्वामीजी कर्माधीश हैं।

रामलाल दादा के मुख से सुना है कि डॉक्टर सरकार के पुत्र अमृत को ठाकुर एक बार दीवाल की ओर मुख करके रहने को कहकर उसकी पीठ पर हाथ फेरने लगे और वह (अमृत) समाधिस्थ हो गया। जिन लोगों को भी ठाकुर का सान्निध्य मिला, उन्हें ऐसे आनन्द की अनुभूति हुई, जिसके द्वारा वे लोग जीवनभर संसार के सैकड़ों कार्यों के बीच में भी शान्ति का बोध करते थे और इसके परिणामस्वरूप संसार के प्रति उनके मन में फिर वैसा आकर्षण नहीं रहा और मरने के समय शायद मुक्ति हो गई।

एक दिन ठाकुर अपने कमरे में बैठे हैं, तभी वे देखते हैं कि बाबू लोगों का एक लड़का वहीं विचरण कर रहा है। ठाकुर ने रामलाल दादा के द्वारा उसे बुलवाकर अपने छोटे खाट के ऊपर बैठाकर उसके शरीर पर हाथ फेरा। वह शान्त हो गया। उसे कुछ होश नहीं रहा। एक बार तो हृदयराम द्वारा बाबू (त्रैलोक्यनाथ विश्वास) की पुत्री के चरणों में पुण्य समर्पित करने से बखेड़ा खड़ा हो गया था और फिर अब यह संकट ! रामलाल दादा तो चिन्तित हो उठे। तब ठाकुर ने उसके सिर पर पंखा झलने को कहा। धीरे-धीरे वह ठीक हो गया। वह बालक किसी तरह चलने लगा। ठाकुर ने उसे उसके घर पहुँचा देने को कहा। अन्ततः उसके अपने घर में प्रवेश करते समय उसकी हालत सामान्य हो गई। इस तरह ठाकुर ने कितने लोगों पर कितनी कृपा की, इसे कौन जानता है? मास्टर महाशय ने थोड़ा और शरत् महाराज ने थोड़ा-कुछ लिख रखा है। इस तरह की कितनी अलिखित घटनाएँ घटी थीं, इसे कौन जानता है।

प्रश्न – ठाकुर में क्या नवीनता है?

महाराज – इस बार नई बात है, बालकों को आकर्षित करना। इसके पहले कभी ऐसा हुआ नहीं। इसका कारण यह है कि इस बार की तरह अध:पतन भी पहले कभी नहीं हुआ। इसीलिए तो ठाकुर इस बार बालकों को आकर्षित कर रहे हैं। बालकों में भी उस समय अच्छे और दोषरहित बच्चे बहुत कम ही मिलते थे, गृहस्थों की तो कोई बात ही नहीं ! समाज का इतना अध:पतन नहीं होने पर क्या ठाकुर आते? इस ग्राम में अखण्डानन्दजी को छोड़कर कोई अन्य व्यक्ति नहीं था, जो यहाँ आश्रम बना सकता था। गाँव में नैतिकता नामक कोई चीज ही नहीं थी, प्रचण्ड निर्धनता।

ठाकुर में भाव था –

सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मानि।
ईक्षते योग युक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः ।।

(क) उन्होंने स्वयं भोजन किया और सबका पेट भर गया। (ख) उनकी पीठ पर थप्पड़-प्रहार का निशान प्रकट हो गया, निर्गुण अवस्था में उन्नत हो गए। (ग) चन्द्र हालदार द्वारा जूते से ठोकर मारना (घ) डॉक्टर दोकौड़ी द्वारा उनकी आँखों में उँगली डालना। इस प्रकार की बातें (डिमान्सट्रेशन) बिल्कुल नवीन हैं। सम्भवतः इसके पूर्व (अवतार में) इसका प्रयोजन भी नहीं था। (ङ) रज:स्वला अर्थात् मधुरभाव साधना में मासिक धर्म आना तथा (च) हनुमान-भाव की उपासना में पूँछ निकल आना। इसके अतिरिक्त सगुण और निर्गुण में बार-बार आवागमन केवल अवतार में ही सम्भव है। स्वामीजी को सूक्ष्मातिसूक्ष्म विवेक देकर जगत् में रखा गया था, इसीलिए वे जीवों के कष्ट को देखकर पागल हो जाते थे। वे लोग अवतार होने के कारण ही समाधि से उतरकर मनुष्यों के समान आचरण कर सकते थे। इसके अतिरिक्त, ठाकुर द्वारा एक ही शरीर से मुसलमान, ईसाई और आनन्दासन तक का अनुष्ठान हुआ था। बाद में तो भैरवी का स्वभाव खराब हो गया था। अतः वे काशी चली गईं। **(क्रमशः)**

जब भी अन्धेरे का आक्रमण हो, अपनी आत्मा पर बल दो और जो कुछ प्रतिकूल है, नष्ट हो जाएगा; क्योंकि आखिर यह सब स्वप्न ही तो है। आपत्तियाँ पर्वत जैसी भले ही हों, सब कुछ भयावह और अन्धकारमय भले ही दिखे, पर जान लो, यह सब माया है। डरो मत, यह भाग जाएगी। कुचलो और यह लुप्त हो जाएगी। ठुकराओ और यह मर जाएगी। डरो मत, यह न सोचो कि कितनी बार असफलता मिलेगी। चिन्ता न करो। काल अनन्त है। आगे बढ़ो, बारम्बार अपनी आत्मा पर बल दो। प्रकाश अवश्य ही आएगा। तुम चाहे, किसी से भी प्रार्थना क्यों न करो, पर कौन तुम्हारी सहायता करेगा? जिसने स्वयं मृत्यु पर विजय नहीं पाई, उससे तुम किस सहायता की आशा करते हो? स्वयं ही अपना उद्धार करो। मित्र, दूसरा कोई तुम्हें सहायता नहीं कर सकता, क्योंकि तुम स्वयं ही अपने सबसे बड़े शत्रु और स्वयं ही अपने सबसे बड़े हितैषी हो। तो फिर आत्मा का आश्रय लो। उठ खड़े हो जाओ, डरो मत।

– स्वामी विवेकानन्द

गाँधीजी और पुन्नीलाल नाई

महात्मा गाँधीजी को बच्चों से बहुत प्यार था। वे बच्चों को बहुत अच्छी-अच्छी कहानियाँ सुनाते थे। ये कहानियाँ तो वे दूसरों के बारे में सुनाते थे, किन्तु उनके जीवन में उनके ही साथ बहुत रोचक और मनोरंजक घटनाएँ भी घटती थीं।

गाँधीजी उस समय इलाहाबाद में 'आनन्द भवन' में आए हुए थे। नेहरू परिवार के घर का नाम 'आनन्द भवन' था। 'आनन्द भवन' को जवाहरलाल नेहरू के पिता मोतीलाल नेहरू जी ने बनाया था। गाँधीजी वहाँ 'कमला नेहरू स्मारक औषधालय' के शिलान्यास के लिए आए थे।

हिन्दी के प्रसिद्ध साहित्यकार श्री पुरुषोत्तमदास टण्डन जी ने इस सम्बन्ध में एक रोचक घटना सुनाई थी। यह बात २३ नवम्बर, १९३९ की है। गाँधीजी को एक नाई की आवश्यकता थी। उनके लिए एक बहुत ही अच्छे नाई को बुलाया गया। उनका नाम पुन्नीलाल था। पुन्नीलाल को खादी कपड़े पहन कर गाँधीजी के दाढ़ी-बाल बनाने के लिए कहा गया। खादी कपड़े अपने देश में ही बनते थे, इसलिए गाँधीजी खादी कपड़े पसन्द करते थे। पुन्नीलाल ने वे कपड़े तो पहन लिए, किन्तु वे उन्हें ठीक फिट नहीं हो रहे थे। जो भी हो, वे खादी कपड़े पहनकर 'आनन्द भवन' की दूसरी मंजिल पर गए, जहाँ गाँधीजी अखबार पढ़ रहे थे। गाँधीजी नाई की प्रतीक्षा कर रहे थे। उसे देखते ही वे बोले, "अरे तुम आ गए? तुम अच्छा बाल बनाते हो न?"

पुन्नीलाल ने गाँधीजी के बाल बनाना शुरू किए और उनकी दाढ़ी भी बनाई। गाँधीजी भी बीच-बीच में उनसे हँसी-मजाक कर रहे थे और उनके घर के बारे में भी पूछ रहे थे। गाँधीजी यह देख रहे थे कि पुन्नीलाल को उन कपड़ों में थोड़ी अड़चन हो रही थी। उन्होंने पुन्नीलाल से पूछा, "क्या तुम हमेशा खादी कपड़े पहनते हो?" पुन्नीलाल भी उधेड़बुन में पड़ गए कि क्या उत्तर दिया जाए। वे झूठ बोलने का साहस नहीं कर पा रहे थे। उन्होंने सच-सच कह दिया कि उन्होंने उधार के कपड़े पहने हैं और उन्हें खादी कपड़े पहनने का अभ्यास नहीं है। गाँधीजी को उनका उत्तर बहुत अच्छा लगा, क्योंकि उन्होंने सच बोला। जवाहरलाल नेहरू जी ने उन्हें हजामत करने के लिए दो रुपए दिए।

पुन्नीलाल के लिए तो उनके जीवन का यह महान दिवस था। जिन गाँधीजी से कुछ क्षण मिलने के लिए विश्व के बड़े-बड़े लोग आतुर रहते थे, उनके साथ पुन्नीलाल जी ने जमकर बातें कीं। वे जब गाँधीजी के बाल बना रहे थे, उस समय एक फोटो भी खींचा गया था। उन्होंने गाँधीजी को प्रणाम किया। गाँधीजी ने उनसे कहा, "तुम अच्छा बाल बनाते हो।" गाँधीजी के ऐसा कहने पर पुन्नीलाल के मन में एक बात सूझी। उन्होंने बापू से कहा, "यदि ऐसी बात है, तो आप मुझे इसका सर्टिफिकेट दीजिए।"

बापू ने उनसे कहा, "तुम जब तक अच्छा काम करते रहोगे, तब तक सर्टिफिकेट की क्या आवश्यकता है?"

पुन्नीलाल भी कहाँ उन्हें छोड़ने वाले थे। आखिर गाँधीजी को बात माननी ही पड़ी। 'आनन्द भवन' का लेटरहैड मँगाया गया और गाँधीजी ने उस पर लिखा –

"भाई पुन्नीलाल ने अच्छी तरह से मेरे दाढ़ी-बाल बनाए हैं। उसका उस्तरा देहाती है और उन्होंने बगैर साबुन के मेरी हजामत की।"

बापू के इस सर्टिफिकेट से पुन्नीलाल की खुशी का ठिकाना न रहा। वे अपने घर पर आए और लोगों को अपना सर्टिफिकेट दिखाने लगे, मानो पूरे संसार की सम्पत्ति उन्हें मिल गई हो। उन्होंने गाँधीजी के साथ अपने फोटोग्राफ और अपने सर्टिफिकेट को अपनी दुकान पर भी लगा दिया था। किसी ने पुन्नीलाल को इस सर्टिफिकेट और फोटो को देने के लिए १००/- रुपए देने चाहे थे, किन्तु उन्होंने अस्वीकार कर दिया। पुन्नीलाल जी का कहना था कि यह उनके जीवन की अमूल्य निधि है और उनकी भावी पीढ़ी के लिए यह एक अनमोल भेंट होगी।

गाँधीजी बहुत बड़े और महान व्यक्ति थे, किन्तु वे स्वयं को एक सरल मनुष्य मानते थे। सबके साथ उनके व्यवहार में मधुरता रहती थी और वे सबके साथ सम्मानपूर्वक बात करते थे। OOO

कृतज्ञता की भावना

स्वामी मेधजानन्द

स्वामी विवेकानन्द हिमालय में भ्रमण कर रहे थे। उस समय वे एक अकिंचन संन्यासी मात्र थे, अर्थात्, विश्व-प्रसिद्ध स्वामी विवेकानन्द के रूप में उनकी प्रसिद्धि नहीं हुई थी। एकदिन जब वे अल्मोड़ा से मात्र दो मील की दूरी पर थे, तभी भूख और थकान के कारण वे मरणासन्न हो गए। स्वामीजी जहाँ अचेत हो गए थे, उसके पास एक मुसलमान फकीर की कुटिया थी। स्वामीजी को ऐसी हालत में पड़ा देखकर वह जल्दी से एक ककड़ी ले आया। किन्तु स्वामीजी का शरीर इतना दुर्बल था कि वे उसे उठाकर मुँह से लगा भी नहीं सकते थे। इसलिए फकीर ने अपने हाथ से उन्हें ककड़ी खिलाई। स्वामीजी थोड़ा स्वस्थ अनुभव करने लगे।

सात वर्षों बाद स्वामीजी जब विश्व-प्रसिद्ध स्वामी विवेकानन्द के रूप में अल्मोड़ा आए, तो स्थानीय जनता ने उनका स्वागत करने के लिए एक सभा का आयोजन किया। कार्यक्रम के बीच स्वामीजी का ध्यान अचानक भीड़ में खड़े एक व्यक्ति पर गया। वह व्यक्ति और कोई नहीं, वही फकीर था, जिसने वर्षों पूर्व स्वामीजी के प्राणों की रक्षा की थी। उस फकीर ने तो स्वामीजी को पहचाना नहीं, किन्तु स्वामीजी उसे भीड़ में सबके सामने ले आए और कहा कि इस फकीर ने ही एकदिन उनकी जान बचाई थी। स्वामीजी ने उस फकीर का अभिवादन किया और उसे कुछ धन भी दिया।

आपातकालीन परिस्थिति में जब हमें रेल द्वारा किसी स्थान पर जाना होता है, तब टिकट वेटिंग मिलने पर टी.टी.ई से प्रार्थनाएँ करनी पड़ती है। उस समय यदि टी.टी.ई बिना ऊपर के पैसे लिए आरक्षित टिकट दे दे, तो उसके प्रति हृदय कृतज्ञता से भर जाता है। इसी प्रकार किसी बड़े अफसर के कार्यालय में प्रवेश के लिए दरबान यदि आसानी से प्रवेश दे, तो उसका हम उपकार मानते हैं।

कृतज्ञता-बोध सुमधुर व्यवहार स्थापित करने का एक विलक्षण गुण है। इससे हमारे जीवन में मधुरता आती है। हमें यह ज्ञात होता है कि समाज में सुव्यवस्थित रहने के लिए और उसे संगठित करने के लिए हमें एक-दूसरे पर निर्भर रहना पड़ता है। हम एक-दूसरे का आदर करना सीखते हैं तथा अपनी और दूसरों की गरिमा को ठेस नहीं पहुँचाते हैं। कृतज्ञता से हमारे मिथ्या गर्व का भी नाश होता है। कई बार व्यक्ति दूसरों की मदद करने में अपने अहंकार का पोषण तो करता है, किन्तु किसी से सहायता ग्रहण नहीं करना चाहता, क्योंकि ऐसा करने से उसके अहंकार को ठेस पहुँचती है।

प्रकृति में भी यदि हम देखें तो वृक्ष, नदियाँ, पर्वत, शस्य-श्यामला पृथ्वी हमें प्रतिक्षण कुछ-न-कुछ दे रहे हैं, किन्तु हम केवल उनका उपभोग कर उन्हें नष्ट और दूषित करते हैं। हम जिस देश में पले-बढ़े हैं, उसकी संस्कृति और सभ्यता ने हमें बहुत कुछ दिया है। हमारा यह कर्तव्य है कि हमें जो वस्तु प्राप्त हुई है, उसका हम संरक्षण और संवर्धन करें। कृतज्ञता की भावना व्यक्ति को विकट परिस्थितियों में भी सेवा करने के लिए बाध्य करती है। एक छात्र जब अपने शिक्षक के उचित मार्गदर्शन द्वारा सफलता के शिखर पर पहुँचता है, तब वह अपने शिक्षक के प्रति श्रद्धा से नतमस्तक हो जाता है और उनका ऋणी हो जाता है। इस ऋणानुबन्ध से छूटने का एकमात्र उपाय यही है कि जो ज्ञान उसे अपने शिक्षक से प्राप्त हुआ है, उसे वह अपनी भावी पीढ़ी को भी हस्तांतरित करे।

जब कोई व्यक्ति हमारी सहायता करता है, तब हम उसके प्रति कृतज्ञ होते हैं, यह बहुत अच्छी बात है। किन्तु सहायता करने वाला व्यक्ति यदि स्वयं दूसरों से ऐसी अपेक्षा करे, तो उसकी सेवा में त्रुटि मानी जाएगी। व्यक्ति को स्वयं कृतज्ञ होना चाहिए, किन्तु दूसरों से ऐसी अपेक्षा नहीं रखनी चाहिए। इसके अलावा किसी व्यक्ति पर कृतज्ञता का बोझ लादकर, उसे अपने प्रति ऋणी भी नहीं करना चाहिए। कृतज्ञता की भावना तभी तक ठीक है, जब तक हमारी नैतिक और मानसिक स्वतन्त्रता बनी रहे। अपने पवित्र और नैतिक सिद्धान्तों को दाव पर रखकर कृतज्ञता का मूल्य चुकाना, कृतज्ञता नहीं कृतघ्नता होगी। ○○○

भारतीय समाज में माँ सारदा का प्रभाव

स्वामी ब्रह्मेशानन्द

पूर्व सम्पादक, वेदान्त केसरी, रामकृष्ण अद्वैत आश्रम, वाराणसी

प्रस्तावना

माँ सारदा के भारतीय समाज पर प्रभाव का अंकन करना इतना आसान नहीं है। स्वामी विवेकानन्द के प्रभाव से सभी परिचित हैं तथा वह सर्वविदित है। स्वामी विवेकानन्द ने भारत तथा विदेशों में अनेक प्रवचन दिये थे तथा उनका बृहत् साहित्य दूर-दूर तक प्रसारित हुआ है। स्वामी विवेकानन्द का नाम भारत का बच्चा-बच्चा जानता है। स्वामी विवेकानन्द के माध्यम से लोग श्रीरामकृष्ण को भी जानने लगे हैं। उनकी जीवनी तथा 'वचनामृत' का लाखों लोग प्रतिदिन पाठ करते हैं तथा उससे प्रेरणा एवं आध्यात्मिक मार्गदर्शन प्राप्त करते हैं। लेकिन माँ की बात भिन्न है। प्रथमत: वे अपनी जीवद्दशा में लोकचक्षु से लगभग पूरी तरह अगोचर ही रहीं। श्रीरामकृष्ण के भक्तगण भी उन्हें केवल गुरु की पत्नी ही समझते थे। अपने जीवन के उत्तरार्द्ध में जब वे गुरुपद पर आसीन हुईं, तब तथा उसके बाद से भी कुछ भक्तों तथा मंत्र शिष्यों के अतिरिक्त अन्य लोग उनसे परिचित नहीं थे। स्वामी विवेकानन्द ने भी भले ही श्रीरामकृष्ण के विषय में कुछ लिखा और कहा हो, पर माँ सारदा के सम्बन्ध में बहुत कम बातें की थीं, अवश्य उनकी ये थोड़ी-सी बातें भी अत्यन्त मूल्यवान हैं। एक बार स्वामी विवेकानन्द ने माँ सारदा की महिमा को प्रचारित करना चाहा था। तब उनके एक गुरुभाई स्वामी योगानन्द ने उन्हें इसके लिये मना किया था। परिणामस्वरूप स्वामी विवेकानन्द के माध्यम से भी माँ सारदा की महिमा प्रकाशित होने से रह गयी और माँ सारदा के वार्तालापों सम्बन्धी एक छोटे-से संकलन के अतिरिक्त उनके उपेदश भी अधिक उपलब्ध नहीं हैं, जिन्हें लोग पढ़ सकें। इस प्रकार हम देखते हैं कि विभिन्न कारणों से माँ सारदा के जीवन तथा उपदेशों की जानकारी जन-साधारण तक या तो पहुँची ही नहीं या पहुँची भी तो काफी विलम्ब से। इसके बावजूद माँ सारदा का प्रभाव भारतीय समाज पर ही नहीं, विदेशों में भी दिखाई देने लगा है।

माँ सारदा की जीवद्दशा में भारतीय समाज पर उनका प्रभाव

माँ सारदा के जीवनकाल में माँ का प्रभाव व्यक्तियों पर, रामकृष्ण मिशन पर तथा नारी जाति के उत्थान सम्बन्धी कार्यक्रमों पर स्पष्ट रूप से हुआ था। प्रथमत: व्यक्तिगत स्तर पर माँ के प्रभाव का अवलोकन करें।

सर्वप्रथम तो माँ सारदा के वे मन्त्र शिष्य थे, जिनका जीवन माँ सारदा को गुरु रूप में स्वीकार करने से पूर्णरूप से परिवर्तित हो गया था। उनके जीवन में शान्ति, सुख और सन्तोष का प्रसार हुआ था और उसका प्रकाश उनके आसपास के समाज पर भी हुआ था। मंत्र-शिष्यों के अतिरिक्त भी जो कोई भक्त माँ के सान्निध्य में आता था, तो उसकी सभी अशान्ति दूर हो जाती और उसमें तृप्ति का संचार होता था। भक्त माँ का वर्ष में एक बार दर्शन करके ही सारा वर्ष आनन्द से व्यतीत कर देते थे। इसका समाज पर प्रभाव आसानी से समझा जा सकता है।

कुछ अपराधी प्रकृति अथवा कलुषित चरित्र वाले ऐसे लोग भी थे, जिनका जीवन माँ सारदा के सम्पर्क में आकर पूर्ण रूप से परिवर्तित हो गया। कुछ दृष्टान्तों द्वारा इसे समझा जा सकता है। माँ सारदा की जीवनी से परिचित सभी लोग अमज़द नामक एक मुसलमान डाकू से भी परिचित होंगे। उस क्षेत्र में उस समय कुछ मुसलमान जुलाहे रहते थे, जो कपड़ा बुनकर जीविका चलाते थे। लेकिन अंग्रेजी मिलों का कपड़ा जब से बाजार में आने लगा, तब से उनकी रोटी-रोजी मारी गयी। तब ये लोग मजदूरी करने लगे। लेकिन मिस्त्री आदि के काम से पर्याप्त आमदनी नहीं

होती थी। फलस्वरूप इनमें से कुछ लोग चोरी-डकैती करने लगे। अमज़द भी एक ऐसा ही अभागा था। माँ सारदा के मकान के निर्माण के समय वह माँ के सम्पर्क में आया था और माँ ने उसे अन्य सभी के समान अपना पुत्र माना था। माँ के सम्पर्क में आने के बाद अमज़द के जीवन में परिवर्तन आया था तथा भले ही उसने चोरी-चकारी को पूरी तरह त्यागा न हो, किन्तु वह पूर्वापेक्षा काफी कम दुर्दान्त हो गया था।

जोगी था एक पालकी वाहक। उसकी पालकी में माँ ने कई बार यात्रा की थी। वह एक बलिष्ठ व्यक्ति था और आस-पास के गाँवों के लोग उससे डरते थे। शराब के नशे में वह कभी-भी अपनी पत्नी की पिटाई करता था, क्योंकि दम्पती के केवल कन्याएँ ही थीं, कोई पुत्र न था। एक बार उसकी पत्नी ने माँ से इसकी शिकायत की। जोगी माँ से बहुत डरता था। माँ सारदा ने उसे डाँटते हुए निर्देश दिया कि वह अपनी पत्नी पर कभी हाथ न उठाए । माँ के आशीर्वाद से उसे एक पुत्र हुआ और उसने भी कभी अपनी पत्नी को नहीं मारा।

दानाकाली नामक एक शराबी तथा विषयगामी व्यक्ति के परिवर्तन में भी माँ की भूमिका है। उसकी पत्नी सहायता के लिये श्रीरामकृष्ण के पास आयी थी। श्रीरामकृष्ण ने उसे माँ सारदा के पास भेज दिया। तब माँ ने उसे एक बिल्व पत्र पर लिखकर एक मन्त्र दिया, जिसका उसने बारह वर्षों तक जप किया। इससे दानाकाली में परिवर्तन आया और वह एक भक्त बन गया।

ऐसी अनेक महिलाओं का उल्लेख किया जा सकता है, जो विषयगामी हो गई थीं अथवा पतिता थीं, लेकिन माँ के सान्निध्य में आने पर उनका जीवन बदल गया। माँ सारदा सम्भ्रान्त घराने की महिलाओं की आपत्ति के बावजूद उन्हें अपने पास आने से मना नहीं करती थीं और इसके परिणामस्वरूप उनलोगों के जीवन में सुधार होता था।

रामकृष्ण संघ पर माँ सारदा का प्रभाव

रामकृष्ण संघ ने सारे भारत को ही नहीं, समग्र विश्व को प्रभावित किया है, यह तो सर्वविदित ही है। इस रामकृष्ण संघ की स्थापना और विकास में माँ सारदा की विशेष भूमिका रही है। श्रीरामकृष्ण की महासमाधि के बाद जब श्रीरामकृष्ण के अन्तरंग संन्यासी शिष्य परिव्राजक बनकर इधर-उधर परिभ्रमण करने लगे, तब माँ सारदा ने भगवान से आतुर प्रार्थना की थी, जिससे वे सब एकत्र होकर रहें। उसी प्रार्थना के कारण तथा स्वामी विवेकानन्द के प्रयास से रामकृष्ण संघ की स्थापना हुई।

माँ सारदा ने अपने कई महत्त्वपूर्ण निर्देशों के द्वारा रामकृष्ण मिशन के चिन्तन, भावधारा और कार्य प्रणाली को भी प्रभावित किया है। एक बार राहत कार्य के लिए धन की आवश्यकता पड़ने पर स्वामी विवेकानन्द बेलूड़ मठ तथा संलग्न भूमिखण्ड तक को बेच देना चाहते थे। माँ सारदा ने ऐसा करने से मना किया। उनकी दूरदृष्टि में यह विदित था कि भविष्य में मिशन अनेक राहत कार्य करेगा। इसी प्रकार माँ ने देवीपूजा के अवसरों पर बंगाल में प्रचलित पशुबलि का रामकृष्ण मिशन की देवी पूजाओं में निषेध किया था। मठ के प्रारम्भिक दिनों में मिशन व मठ के सचिव स्वामी सारदानन्द जी माँ से समय-समय पर परामर्श करते थे तथा तदनुरूप कार्य करते थे।

नारी उत्थान संस्थाओं पर माँ का प्रभाव

माँ सारदा ने अपने जीवनकाल में तीन ऐसी संस्थाओं पर अपना प्रभाव-विस्तार किया था, जिन्होंने नारी-उत्थान में विशेष योगदान किया है। वे हैं – भगिनी निवेदिता का बालिकाओं के लिए स्कूल, गौरी माँ द्वारा स्थापित सारदेश्वरी आश्रम तथा रामकृष्ण-सारदा मिशन। स्वामी विवेकानन्द की प्रेरणा से मिस मार्गरेट नोबल (सिस्टर निवेदिता) इंग्लैण्ड से नारी शिक्षा के लिए भारत आयी थीं तथा उन्होंने महिलाओं के लिए एक स्कूल चलाया था। इस स्कूल के प्रति माँ सारदा की काफी स्नेह दृष्टि थी तथा भगिनी निवेदिता को वे बहुत प्रोत्साहित करती थीं। माँ सारदा के स्कूल में आगमन पर वहाँ एक उत्सव-सा होता था और खूब खुशियाँ मनायी जाती थीं। माँ सारदा के प्रोत्साहन से निवेदिता का स्कूल तत्कालीन बंगाली समाज में प्रतिष्ठा प्राप्त कर सका था।

श्रीरामकृष्ण की महिला भक्त गौरी माँ द्वारा चलाया गया सारदेश्वरी आश्रम भी माँ की कृपादृष्टि से वंचित नहीं था। आश्रम के नाम से ही समझा जा सकता है कि उसका आदर्श माँ सारदा ही थीं। माँ ने इस आश्रम में कई बार पदार्पण किया था। गौरी माँ की मुख्य शिष्या दुर्गापुरी देवी माँ सारदा की ही मंत्रशिष्या थीं। उन्होंने माँ सारदा की एक सुन्दर जीवनी भी लिखी है।

रामकृष्ण भावधारा की महिला शाखा, रामकृष्ण-सारदा मठ व मिशन की शुरुआत माँ सारदा के देहावसान के कई वर्षों बाद हुई थी। लेकिन इसकी भूमिका माँ सारदा के

जीवित रहते हुए हो गयी थी। सरला देवी माँ सारदा की शिष्या थीं तथा परवर्तीकाल में प्रव्राजिका भारतीप्राणा के नाम से सारदा मठ की प्रथम अध्यक्षा हुई थीं।

माँ सारदा की महासमाधि के बाद उनका प्रभाव

माँ सारदा की महासमाधि के बाद भी उनका प्रभाव भारतीय समाज पर बना हुआ है। सन् १९५३ में माँ की जन्म शताब्दी के बाद लज्जापटावृता माँ मानो अचानक समाज में अपने को प्रकट करने लगी हैं। शताब्दी के अवसर पर उनके सम्बन्ध में कई पुस्तकें प्रकाशित हुईं तथा लोग धीरे-धीरे उनके बारे में जानने लगे हैं। उनके चित्र का जादू भी लोगों को मोहित कर रहा है। अनेक लोगों को उनके चित्र में अपनी स्वयं की माँ दिखायी देती है और जाने-अनजाने लोग उनसे आकृष्ट हो रहे हैं। जिस प्रकार स्वामी विवेकानन्द का आह्वान, 'उठो, जागो और लक्ष्य प्राप्त होने तक मत रुको', आज भी भारतीय नवयुवकों को उत्साहित कर रहा है, उसी प्रकार माँ सारदा का सन्देश, 'मैं सज्जन की भी माँ हूँ, दुर्जन की भी माँ हूँ' 'जब कभी तुम कठिनाई में होओ, तो सदा याद रखना कि तुम्हारी एक माँ है, जो ठीक समय पर तुम्हें मुक्ति प्रदान करेगी', भी असंख्य लोगों को शान्ति एवं सान्त्वना प्रदान कर रहा है।

एक बार माँ सारदा ने कहा था कि आदर्श प्रस्तुत करने के लिये जितना करना चाहिए, मैंने उससे बहुत अधिक किया है। सचमुच माँ सारदा ने त्याग, नि:स्वार्थता, सेवा, सहिष्णुता, करुणा आदि सद्गुणों के श्रेष्ठतम दृष्टान्त अपने जीवन के माध्यम से प्रस्तुत किये हैं। उनके चित्रों और उपदेशों के अतिरिक्त उनका जीवन संसार में कैसे रहना चाहिये, इसका उत्कृष्टतम उदाहरण है। अपने कर्तव्य-कर्म करते हुए जीवन में भगवान के आनन्द का आस्वादन कैसे प्राप्त करना चाहिये तथा संसार में आसक्त होते हुए भी अनासक्त कैसे बने रहना चाहिये, ये सारी बातें माँ के जीवन से सीखने को मिलती हैं। भगिनी निवेदिता के अनुसार माँ सारदा भारतीय नारी के सम्बन्ध में श्रीरामकृष्ण की मान्यता का पूर्णतम प्रतीक या दृष्टान्त हैं। लेकिन भगिनी निवेदिता यह कहने में असमर्थ थीं कि माँ पुरातन भारतीय नारियों में आदर्श थीं या भावी भारतीय नारी का आदर्श थीं। स्वामी बुधानन्द जी तो इससे भी एक कदम आगे जाकर कहते हैं कि माँ केवल भारतीय नारियों की ही आदर्श नहीं हैं, बल्कि उन्होंने ऐसा आदर्श प्रस्तुत किया है, जिसे प्राच्य और पाश्चात्य के सभी नर-नारी स्वीकार कर सकते हैं, क्योंकि वे श्रीरामकृष्ण के आदर्श का पूर्ण प्रतिनिधित्व करती हैं।

आज बहुत से नर-नारियों ने अपने जीवन को माँ सारदा के जीवन के अनुरूप परिवर्तित किया है। जब स्वामी विवेकानन्द और श्रीरामकृष्ण के जीवन और उपदेशों को पढ़ने के बाद लोग माँ की जीवनी से परिचित होते हैं, तो उन्हें एक नया आलोक, एक नयी दिशा मिलती है। क्योंकि उनका जीवन दैनन्दिन जीवन में व्यावहारिक वेदान्त का सर्वश्रेष्ठ प्रकाशस्वरूप, सर्वश्रेष्ठ उदाहरणस्वरूप है। आँकड़ों के द्वारा माँ के भारतीय समाज पर प्रभाव को बताना भले ही सम्भव न हो, पर यह तो निश्चित है कि एक बार माँ के जीवन और उपदेशों से परिचय होने के बाद कोई भी व्यक्ति उनसे अप्रभावित नहीं रह सकता।

पति-पत्नी के आपसी सम्बन्धों – दाम्पत्य जीवन पर माँ सारदा का स्पष्ट प्रभाव देखने में आता है। माँ सारदा और श्रीरामकृष्ण के सम्बन्धों के बारे में पढ़ने के बाद, विशेषकर माँ सारदा की पवित्रता की जानकारी के बाद बहुत से पति-पत्नी आपस में भाई-बहन की तरह रहने लगे हैं। ऐसी स्थिति में पत्नी की भूमिका अधिक होती है। वे अपने पतियों को संयम का जीवन व्यतीत करने में प्रेरणा और सहायता करती हैं। ऐसे भी प्रमाण मिले हैं कि बहुत से पुरुषों की काम-वासना माँ के चित्र पर त्राटक करने से कम हो जाती है।

माँ सारदा का रामकृष्ण भावधारा पर प्रभाव पूर्ववत् बना हुआ है। रामकृष्ण भावधारा में बहुत से स्वतन्त्र केन्द्र भी हैं, जिनमें माँ सारदा की जीवनी तथा उपदेशों का पाठ होता है तथा इन केन्द्रों के माध्यम से माँ सम्बन्धी पुस्तकों का प्रसार, विक्रय आदि भी होता है। माँ का पावन चित्र अपनी उपस्थिति मात्र से इन केन्द्रों के वातावरण में शान्ति का विस्तार करता है। माँ के आदर्श से प्रेरित होकर कई कन्या शालाएँ चलायी जाती हैं। ऐसी प्रधानाध्यापिकाएँ भी हैं, जो माँ के आदर्श से प्रेरित हो अपनी छात्राओं में उन आदर्शों को ढालने का प्रयत्न कर रही हैं।

रामकृष्ण-सारदा मठ का भी विस्तार हो रहा है। बहुत सी प्रतिभावान लड़कियाँ माँ सारदा के आदर्श से प्रेरित हो सारदा मठ में योगदान कर रही हैं तथा त्याग और सेवा का आदर्श जीवन व्यतीत करने का प्रयत्न कर रही हैं।

माँ सारदा का भावी भारतीय समाज पर प्रभाव

रामकृष्ण-सारदा-विवेकानन्द भावधारा केवल वर्तमान पीढ़ी के लिए ही नहीं है। वह तो आगामी हजार वर्षों हेतु

सारे विश्व के लिये है। ज्यों-ज्यों दिन बीतते जायेंगे, त्यों-त्यों स्वामी विवेकानन्द और श्रीरामकृष्ण से भी अधिक माँ सारदा के जीवन तथा उपदेश समाज को प्रभावित करेंगे। माँ सारदा, स्वामी विवेकानन्द के समान 'योद्धा सन्त' नहीं हैं और न ही श्रीरामकृष्ण की तरह 'समाधिमग्न-परमहंस'। वे तो अपनी विशिष्ट-शैली में अत्यन्त कर्मठ हैं और साथ-ही-साथ पूर्णत: शान्त और सुगंभीर भी। वे एक त्रिगुणातीत देवी के समान सदैव स्वमहिमा में विराजित हैं। उनका सन्देश श्रीरामकृष्ण और स्वामी विवेकानन्द के सन्देश का भी अतिक्रमण-सा करता है और वह सन्देश है – प्रेम का। ''संसार को अपना बनाना सीखो, कोई पराया नहीं है। सारा संसार तुम्हरा है।'' यह है माँ का सन्देश। भविष्य में जब लोग अधिकाधिक अहं केन्द्रित होते जायेंगे, जब परिवार और छोटे होने लगेंगे, जब तलाक आदि के कारण माता या पिता, केवल एक ही अभिभावक रह जाएगा, तब माँ द्वारा प्रदत्त उपर्युक्त सन्देश के सिवा कौन समाज की रक्षा करेगा?

भविष्य के तनावपूर्ण प्रतिस्पर्धात्मक युग में माँ सारदा का जीवन और सन्देश लोगों को शान्ति एवं आश्रय प्रदान करेगा, विशेषकर उन्हें जो संघर्षपूर्ण जीवन में पीछे रह जा रहे हैं। जो लोग न तो स्वामी विवेकानन्द के आह्वान से उठ खड़े होने में समर्थ हैं और न श्रीरामकृष्ण के उपदेशों के अनुसार सांसारिकता त्यागकर भगवान में मन लगा सकते हैं, ऐसे लोगों को माँ मानो अपनी गोद में लेकर सान्त्वना प्रदान करेगीं – ''बेटा भय मत करो, जब तक मैं – तुम्हारी माँ हूँ। सदा याद रखो कि तुम्हारे पीछे एक व्यक्ति है, जो ठीक समय पर आकर तुम्हारा उद्धार करेगी।''

जो लोग इस भोगवादी द्रुतगति से भागने वाले समाज में सफल हो रहे हैं, वे भी अशान्त हैं, दुखी हैं, ऐसे लोगों की संख्या आनेवाले भविष्य में और अधिक होगी। ऐसे लोगों के पास है तो सब-कुछ, लेकिन ये स्वयं को अकेला और निराश्रय अनुभव करते हैं। समाज में रहते हुए भी वे कटे-कटे से रहते हैं। ऐसे लोगों पर भी माँ शान्ति-वारि का वर्षण करेंगी। भविष्य में ऐसे भी अनेक दुर्बल साधक होंगे, जो भगवान के लिये सर्वस्व का त्याग नहीं कर सकेंगे। उनके लिए भी रहेगी माँ की अभय-वाणी – ''तुम आखिर कितना करोगी। तुमसे जितना हो सके, करो। बाकी मैं कर दूँगी।'' अथवा, ''तुम्हें कुछ करने की आवश्यकता नहीं, मैं तुम्हारे लिए सब कर रही हूँ।''

प्रत्येक समाज में असमर्थता, अनिश्चितता तथा अपर्याप्तता की समस्या रही है। लेकिन भविष्य के भारत में आधुनिक विदेशी संस्कृति का प्रभाव भी दिखायी देने लगा है, जो भविष्य में अधिकाधिक बढ़ता जाएगा। विशेषकर यौन सम्बन्धों के विधि-निषेध तेजी से समाप्त हो रहे हैं, जिसका सबसे अधिक प्रभाव नारियों पर पड़ेगा। उनकी रक्षा माँ सारदा के सिवा और कौन कर सकता है?

यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि भविष्य का भारतीय समाज भविष्यत् झटके को माँ सारदा के आदर्श को स्वीकार कर ही सहन कर जीवित रह सकेगा तथा अपनी विशिष्टता बनाए रख सकेगा। ○○○

सेवा धर्म

विजय कुमार श्रीवास्तव

शुद्धचित्त हो शीतल मन हो, वाणीसंयम और सहजता,
क्षमाभाव सद्भाव अगर हो, तो फिर कहीं क्रोध न टिकता।
जीव-जीव में प्रेम अगर हो, कटुता अपने आप किनारे,
एक पिता की सब सन्तानें, कभी कहीं ना भेद विचारें।।

हम सबके हों, सब अपने हों, टिके न अपना और पराया,
परहित जब काम आ सकें, तब ही उत्तम अपनी काया।
शील और आदर की थाती रहे, रहे सबमें अपनापन,
परपीड़ा का बोध रहे, ऐसा निर्मित करना अपना मन।।

निर्भय हो परहित सेवा में, लगा रहे जब मानव जीवन,
तब ही सुखद सुगन्ध धरा के, गुल्मों की महकाती उपवन।
मानवता हो पुष्ट, कुटिलता व्यवहारों की लगे किनारे,
तीर्थ समान द्वार बन जायेंगे, जग के ही पावन सारे।।

ईर्ष्या-राग-द्वेष जीवन में, जग जाहिर पशुता के बन्धन,
लोभ और मद हर लेते हैं, शुभकर्मों के पुण्यों का धन।
नाम-ध्यान प्रभु के वैभव का, इन सारे पापों से तारे,
बड़े-बड़े पापी पा यह सुख, उनके पावन धाम सिधारे।।

अपने हित तो सब जीते हैं, दिव्य धरा पर परहित जीना,
स्वार्थ बिना पीड़ित का पीड़ा-गरल सुधा सम हँसकर पीना।
मत फूलो मिथ्या वैभव से क्षणभंगुर यह जीवन प्यारे,
सेवा से कर पावन कर लो, जाति-पाति को बिना विचारे।।

आध्यात्मिक जिज्ञासा (२८)

स्वामी भूतेशानन्द

शास्त्रीय कुछ विषयों की चर्चा करने के बाद महाराज ने कहा – " '**न हि न हि रक्षति डुकृञ् करणे**।' अन्त समय में ये सब काम नहीं देता। जैसाकि ठाकुर ने कहा है, पक्षी टें टें करता है।" महाराज ने बहुत गम्भीर स्वर में कहा, "एक-एक करके दिन बीतता जा रहा है। उस दिन के लिये तैयार होओ। ऐसा सुरक्षित स्थान और कहीं नहीं पाओगे। सारा जगत भ्रमण करने के बाद भी नहीं पाओगे।" इसके बाद दान की बात चली।

प्रश्न – महाराज ! क्या हमलोग दान कर सकते हैं?

महाराज – (अपने हाथ से हृदय का स्पर्श कर दिखाते हुये) हमलोग इसे दान कर सकते हैं। अपना हृदय दे सकते हैं। हृदय देने का अर्थ है सहानुभूति। क्योंकि यही हमलोगों का अपना है।

किसी ब्रह्मचारी की पोस्टिंग नहीं हो रही है, इसे देखकर महाराज ने कहा – "बैठे हो, कोई कार्य नहीं है। थोड़ा-थोड़ा ठाकुर का कार्य करना चाहिये। हमारे समय जिनका मठ में कार्य नहीं रहता था, वे लोग सब्जी काटते थे। कल से तुम भी थोड़ी सब्जी काटना।" दूसरे दिन सबेरे महाराज ने कहा, "अरे, उसे तो देख नहीं रहा हूँ!" ब्रह्मचारी प्रशिक्षण केन्द्र के प्रिंसिपल महाराज ने कहा, "उसको देखा, वह सब्जी काट रहा है।" महाराज ने कहा, "अच्छा है, मैंने ही उसे भेजा है।" हमारे समय जिसका काम नहीं रहता था, वह सब्जी काटता था। ठाकुर का थोड़ा कार्य करना चाहिये।"

प्रश्न – महाराज ! शास्त्र में गुरु-सेवा के सम्बन्ध में बहुत-सी बातें कहीं गई हैं। किन्तु सम्प्रति हमारा संघ इतना बड़ा हो गया है कि व्यक्तिगत रूप से गुरु की सेवा करना सबके लिये असम्भव है। इस सम्बन्ध में हमलोगों को क्या करना चाहिये?

महाराज – संघ की सेवा ही गुरु-सेवा है। स्वामीजी ने कहा है कि संघ ठाकुर का शरीर है। इसलिये संघ की सेवा ही इष्ट और गुरु की सेवा है।

सोये रहने पर प्रणाम करना चाहिये कि नहीं, इस सम्बन्ध में बात हो रही है। महाराज ने कहा, "मैं सोये रहता हूँ, तो कई लोग पूछते हैं कि क्या प्रणाम कर सकता हूँ? मैं कहता हूँ, क्यों नहीं करोगे? मुझे कोई कठिनाई नहीं है। सोये रहने पर लोग प्रणाम करना नहीं चाहते हैं, क्योंकि शव जैसा लगता है। संन्यासी मरा हुआ है। उसका शरीर तो शव है। संन्यासी शरीर को शव समझेगा। अर्थात् जैसे कोई मृत शरीर में 'अहं' भाव नहीं रखता है, वैसे संन्यासी अपने शरीर को शव समझेगा। श्राद्ध आदि करके संन्यासी तो विदेह हो चुका है। अब उसकी देह कहाँ से होगा?"

प्रश्न – महाराज ! विभिन्न प्रकार की साधनाओं के समय ठाकुर के शरीर में जो विभिन्न प्रकार का परिवर्तन होता था, उसका उल्लेख करते हुये शरत् महाराज लिखते हैं, "हमारा मन ही शरीर की सृष्टि करता है।" इसका क्या अर्थ है?

महाराज – साधारणत: देखा जाता है कि जिसका मन कोमल होता है, उसका शरीर भी कोमल होता है। जिसका मन कठोर होता है, उसका शरीर भी कठोर होता है। मन का प्रभाव शरीर पर पड़ता है। मन और शरीर का सम्बन्ध परस्पर निर्भर करता है। इसीलिये जो लोग भक्ति-भाव से साधना करते हैं, उन्हें भोजन आदि विशेष प्रकार से करना पड़ता है।

प्रश्न – महाराज ! आजकल ठाकुर को गैरिक वस्त्र पहनाया जाता है। मैंने सुना है कि अपने जीवन-काल में वे कभी गैरिक वस्त्र नहीं पहनते थे, क्योंकि इससे उनकी गर्भधारिणी माँ को कष्ट होगा।

महाराज – हाँ, ठाकुर कभी श्वेत और कभी पीला वस्त्र पहनते थे। पीला वस्त्र उन्होंने जन्मदिन पर पहना है। उन्होंने कभी गेरुआ-वस्त्र पहना है, यह नहीं सुना गया। क्योंकि वे तो एक आधार में संन्यासी और गृहस्थ दोनों ही थे। **(क्रमश:)**

आधुनिक मानव शान्ति की खोज में (२०)

स्वामी निखिलेश्वरानन्द

अध्यक्ष, रामकृष्ण आश्रम, राजकोट

जो कुछ है सो तू ही है

"नरेन, तेरी इच्छा क्या है?'' श्रीरामकृष्ण देव ने अपने प्रिय शिष्य नरेन्द्रनाथ से पूछा, जो बाद में स्वामी विवेकानन्द बने। नरेन्द्रनाथ ने कहा, "मैं हमेशा समाधि में लीन रहना चाहता हूँ। शरीर की रक्षा के लिए बीच-बीच में समाधि से बाहर आकर कुछ खाकर फिर समाधि के आनन्द में लीन हो जाऊँ, यही मेरी इच्छा है।''

यदि दूसरे कोई गुरु होते, तो अपने शिष्य की ऐसी, समाधि में ही रहने की भावना देखकर प्रसन्न हो जाते, परन्तु ये गुरु तो अनोखे थे। उन्होंने प्रसन्न होने के बदले कहा, "अरे, धिक्कार है तुझे ! मैं तो चाहता था कि तू एक विशाल वटवृक्ष जैसा बने, जिसकी छाया में लाखों नर-नारी शान्ति प्राप्त करें, परन्तु तु तो केवल अपनी मुक्ति और अपने आनन्द की ही कामना कर रहा है। अरे, समाधि से भी उच्चतर एक स्थिति है। क्या तुम वह भजन नहीं गाते हो? – 'जो कुछ है, सो तू ही है।' ''

यह भजन मुगल बादशाह बहादुरशाह जफर ने लिखा था। श्रीरामकृष्ण देव और नरेन्द्रनाथ दोनों का यह प्रिय भजन था। वैसे तो यह एक सूफी गीत है, लेकिन इसमें वेदान्त का दर्शन प्रकट होता है। सर्वव्यापक ईश्वर को सम्बोधित करके कवि कहता है –

'तुझ से हमने दिल को लगाया,
जो कुछ है सो तू ही है।
एक तुझको अपना पाया,
जो कुछ है सो तू ही है।।

इस गीत में कहा गया है कि संसार में जो कुछ है, वह सब ईश्वर ही है। वह प्रत्येक में स्थित है, इसलिये प्रत्येक जीव समान है। एक ही चैतन्य सत्ता समस्त जगत में व्याप्त है – वेदान्त का यह सत्य कवि ने प्रकट किया। आज के वैज्ञानिक भी अब समस्त जगत में व्याप्त एक ही चैतन्य सत्ता को स्वीकार करने लगे हैं। महान वैज्ञानिक श्रोडिंजर भी कहते हैं, "Consciousness is singular of which plural is unknown – चेतना एक ही है, वह अनेक नहीं हो सकती।'' श्रीरामकृष्ण देव ने इस गीत द्वारा नरेन्द्र को बताया कि केवल समाधि का आनन्द पर्याप्त नहीं है, प्रत्येक में विद्यमान ईश्वर का अनुभव करना और उस ईश्वर की सेवा करना, उससे भी बड़ी बात है।

एक दिन श्रीरामकृष्ण देव ने भक्तों के साथ वैष्णव सम्प्रदाय की बात करते हुए कहा, "नाम में रुचि, वैष्णवों की सेवा और जीव पर दया, ये तीन वैष्णव सम्प्रदाय के मुख्य उपदेश हैं।'' जीव पर दया बोलते-बोलते वे भावदशा में चले गये और फिर अर्धबाह्य दशा में कहने लगे, "जीव पर दया? पृथ्वी पर रेंगता हुआ एक क्षुद्र कीटानुकीट दूसरे जीवों के प्रति दया दिखाये? तू भला दया दिखाने वाला है ही कौन? नहीं, प्रत्येक जीव शिवरूप है। जीव की शिवज्ञान से सेवा करनी चाहिए।'' नरेन्द्रनाथ ने गुरुदेव के इन शब्दों में अद्भुत प्रकाश देखकर कहा, "यदि मुझे अवसर मिलेगा, तो इस महान सत्य को संसार के सामने प्रस्तुत करूँगा।'' उन्हें अवसर मिला भी। अमेरिका से वापस आने के बाद उन्होंने रामकृष्ण मिशन की स्थापना की और उसमें शिवज्ञान से जीवसेवा के आदर्श को साकार किया। एक दिन उनसे मिलने के लिये कलकत्ता से एक युवक आया, उसने कहा, "स्वामीजी, मैंने अनेक उपाय किये, परन्तु मेरे मन में शान्ति नहीं है।'' "शान्ति प्राप्त करने के लिए तुम क्या करते हो?'' स्वामीजी ने उससे पूछा। "मैं तो कमरे में खिड़की दरवाजे बन्द करके, आँखें बन्द करके, ध्यान में बैठकर, मन को विचारों से शून्य करने का प्रयत्न करता हूँ।'' यह सुनकर स्वामीजी ने कहा, "वत्स् ! यदि तुम्हें शान्ति चाहिए, तो सर्वप्रथम तुम अपने कमरे के बन्द खिड़की-दरवाजे को खोल दो, फिर आँखें खोलकर देखो कि पड़ोस में कौन दुखी, भूखा, गरीब, निराश्रित, रोगी है, उसकी सेवा करना शुरू कर दो, तुम्हें तुरन्त मन की शान्ति मिलेगी।''

शान्ति प्राप्त करने का सरलतम मार्ग है दूसरों की नि:स्वार्थ सेवा करना। आज मनुष्य बहुत दुखी और अशान्त है, उसका कारण उसकी स्वार्थवृत्ति है। वह केवल अपना ही विचार करता है, अपना ही लाभ देखता है, इसलिए उसकी मनोवृत्ति अत्यन्त संकुचित हो गई है। उसके अन्दर स्थित शान्ति के स्रोत के सामने स्वार्थ का भयानक अवरोध इतना मजबूत बन जाता है कि अन्दर की शान्ति का प्रवाह बाहर आ नहीं सकता है। लेकिन यदि मनुष्य नि:स्वार्थ बन जाए, दूसरों की सेवा करे, तो उसे विशालता प्राप्त होती है। उसकी

नकारात्मक वृत्तियाँ समाप्त हो जाती हैं और उसके अन्दर की शान्ति का प्रवाह समग्र अस्तित्व पर छा जाता है। इसलिये यदि कोई थोड़ी भी नि:स्वार्थ भाव से सेवा करे, तो तत्काल उसे शान्ति मिलती है। जो अपना समग्र जीवन दूसरों की नि:स्वार्थ भाव से सेवा करने में समर्पित कर देते हैं, उन्हें तो स्वयं भगवान भी मिल जाते हैं। इसीलिए स्वामी विवेकानन्द ने अपनी पुस्तक 'राजयोग' में नि:स्वार्थता पर बहुत जोर दिया है। वे कहते हैं, "मानव जीवन के विषय में समग्र विचार एक ही शब्द में वर्णन कर सकते हैं, नि:स्वार्थता।" आगे वे कहते हैं, "हमें क्यों नि:स्वार्थ बनना चाहिए? इसका सच्चा उत्तर यह है कि यह जगत इस अनन्त महासागर में एक बिन्दु मात्र है। अनन्त श्रृंखला की एक कड़ी मात्र है। अर्थात् मनुष्य जो कुछ अन्य को देता है, वही उसे वापस मिलता है, क्योंकि सभी एक ही तत्त्व से जुड़े हुए हैं। जैसे श्रृंखला की कड़ी उस श्रृंखला से अलग नहीं है, वैसे ही एक मनुष्य दूसरे से अलग नहीं है। इसलिये यदि वह नि:स्वार्थ भाव से दूसरों की सेवा करता है, तो उससे वह अपना ही कल्याण करता है। क्योंकि वेदान्त की दृष्टि से, "दूसरा तो कोई है ही नहीं।" मनुष्य दूसरों को जो देता है, वही उसके पास वापस आता है। 'डायनेमो' में जैसे विद्युत की शक्ति घूम-घूम कर वापस आती है, वैसे ही इस सूक्ष्म जगत में भी व्यक्ति जो कुछ विचार और कार्य अन्य के लिये करता है, वे सब उसके पास वापस आते हैं। इसलिये यदि नि:स्वार्थ भाव से दूसरों की सेवा करके उन्हें सुख-शान्ति दी गई हो, तो वही सुख-शान्ति बढ़कर दुगुनी होकर वापस आती है। इसी प्रकार यदि अन्य को दुख दिया गया हो, तो वह दुख भी बढ़कर वापस लौटता है। अत: यदि स्वयं के दुख दूर करना हो, तो दूसरों के दुख दूर करें, यह दुख दूर करने का सरलतम मार्ग है। जो लोग दूसरों में स्थित प्रभु की सेवा करते हैं, रोगी-नारायण, दरिद्र-नारायण, दुखी-नारायण की सेवा करते हैं, उन्हें सेवा करते-करते, 'जो कुछ है सो तू ही है' का दर्शन होने लगता है। इस प्रकार सेवा द्वारा उन्हें व्यापक ब्रह्म की अनुभूति होती है। समाधि द्वारा जो प्राप्त होता है, उससे भी ऊँची विज्ञानमय अवस्था सेवा के द्वारा प्राप्त हो सकती है।

यदि अन्य की सेवा करने में कोई सक्षम न हो, तो उसे दूसरों के कल्याण के लिये प्रार्थना करनी चाहिए। इससे भी शान्ति प्राप्त होती है। क्योंकि दूसरों का कल्याण करना, अपना ही कल्याण करना है। स्वामी विवेकानन्द ने 'राजयोग' में प्रार्थना की विधि बतायी है। वे कहते हैं, "सीधे तन के बैठो। सबसे पहले समग्र सृष्टि में पवित्र भावनाओं का प्रवाह भेजो।" मन में बोलो, "सब सुखी हों, सब निरोगी हों, सब को शान्ति मिले, सबका कल्याण हो। इस प्रकार पूर्व-पश्चिम, उत्तर-दक्षिण चारों दिशाओं में भावना भेजो। तुम जैसे-जैसे इस भावना को बढ़ाओगे, वैसे-वैसे अधिक लाभ होगा। अन्त में तुम्हें अनुभव होगा कि अपने आपको स्वस्थ रखने का सरलतम उपाय है – दूसरे लोग निरोगी रहें, ऐसी भावना करना और अपने आपको सुखी करने का सरलतम उपाय है – दूसरों को सुख मिले, ऐसा व्यवहार करना।" इस प्रकार जो दूसरों को सुखी करते हैं, उन्हें फिर शान्ति की खोज में कहीं भटकना नहीं पड़ता है। एक सुन्दर प्रार्थना है, जिसमें दूसरों के दुख दूर करने की आकांक्षा की गयी है, जो हम भी कर सकते हैं –

न त्वहं कामये राज्यं न स्वर्गं नापुनर्भवम्।
कामये दुःखतप्तानां प्राणिनामार्तिनाशनम्।।

"मुझे राज्य नहीं चाहिए, स्वर्ग नहीं चाहिए, मोक्ष भी नहीं चाहिए। हे भगवन् ! दुखियों के दुःख दूर करने की ही मेरी आकांक्षा है।" जिसके हृदय में ऐसी आकांक्षा हो, उसके हृदय में सुख-शान्ति सदा निवास करती है।

सहिष्णुता जैसा कोई दूसरा गुण नहीं है। सबमें सहिष्णुता का गुण होना चाहिए। जैसे लुहार की निहाई के ऊपर हथौड़े से जोर-जोर से चोट पड़ने पर वह जरा भी नहीं हिलती है, वैसे ही बुद्धि को निहाई की तरह स्थिर रखो। जिसे जो ठीक लगे वह करे, सब सहन कर लेना चाहिए। **(क्रमशः)**

सीता के विषय में क्या कहा जाए? तुम संसार के समस्त प्राचीन साहित्य को छान डालो और मैं तुमसे नि:संकोच कहता हूँ कि तुम संसार के भावी साहित्य का भी मन्थन कर सकते हो, परन्तु उसमें से तुम सीता के समान दूसरा चरित्र नहीं निकाल सकोगे। सीता-चरित्र अद्वितीय है। यह चरित्र सदा के लिए एक ही बार चित्रित हुआ है। राम तो कदाचित् अनेक हो गए हैं, किन्तु सीता दूसरी नहीं हुई। भारतीय-नारियों को जैसा होना चाहिए, सीता उनके लिए आदर्श हैं। नारी-चरित्र के जितने भारतीय आदर्श हैं, वे सब सीता के ही चरित्र से उत्पन्न हुए हैं।

– स्वामी विवेकानन्द

लघु-वाक्यवृत्ति
श्रीशंकराचार्य

(अनुवाद : स्वामी विदेहात्मानन्द)

वह्नितप्तं जलं तापयुक्तं देहस्य तापकम् ।
चिद्भास्या धीस्तदाभासयुक्तान्यं भासयेत्तथा ।।६ ।।

अन्वयार्थ – (जैसे) **वह्नितप्तं** अग्नि के द्वारा गर्म किया हुआ **जलं** पानी **तापयुक्तं** ताप से युक्त होकर **तापकं** उष्णता का (कारण होता है), **तथा** वैसे ही **धीः** बुद्धि **चित्-भास्या** चैतन्य द्वारा प्रकाशित होकर **तत्** उस चैतन्य के **आभासयुक्ता** प्रतिबिम्ब से युक्त होकर **देहस्य** शरीर को (तथा) **अन्यं** दूसरी वस्तुओं को **भासयेत्** प्रकाशित करती है।

भावार्थ – (जैसे) अग्नि के द्वारा गर्म किया हुआ पानी ताप से युक्त होकर, उष्णता का (कारण होता है), वैसे ही बुद्धि – चैतन्य द्वारा प्रकाशित होकर, उस चैतन्य के प्रतिबिम्ब से युक्त होकर, शरीर (तथा) दूसरी वस्तुओं को प्रकाशित करती है।

– टीका –

चैतन्य-द्वय-भासितेन अन्तःकरणेन बाह्य-पदार्थोपलब्धिं दर्शयति – वह्नि-तप्तम् इति। वह्नितप्तं सत् यथा जलं तापयुक्तं भवति, तथा चिद्भास्या कूटस्थ-चैतन्येन प्रकाशिता बुद्धिः तदाभास-युक्ता चिदाभासेन प्रकाशिता च सती अन्यं घटादि-विषयं भासयेत्। कूटस्थ-चिदाभास-चैतन्याभ्यां प्रकाशितया बुद्ध्या घटादि-विषयं ज्ञानम् उत्पाद्यते इत्यर्थः ।।

भावार्थ – अब – 'वह्नितप्तम्' आदि के द्वारा दोनों चैतन्यों द्वारा प्रकाशित होनेवाले अन्तःकरण के द्वारा बाह्य पदार्थों की उपलब्धि का रूप दिखाते हैं। जैसे जल अग्नि से तप्त होकर स्वयं तापयुक्त हो जाता है, वैसे ही चैतन्य द्वारा आभासित कूटस्थ चैतन्य द्वारा प्रकाशित 'बुद्धि' – शुद्ध-चैतन्य के आभास से युक्त अर्थात् चैतन्याभास द्वारा प्रकाशित होने पर, अन्य घट आदि विषयों को भी प्रकाशित करती है। तात्पर्य यह कि शुद्ध चैतन्य से आभासित बुद्धि के द्वारा ही हमें घट आदि बाह्य विषयों का ज्ञान हुआ करता है।।६।।

रूपादौ गुणदोषादि-विकल्पा बुद्धिगाः क्रियाः ।
ताः क्रिया विषयैः सार्धं भासयन्ती चितिर्मता ।।७ ।।

अन्वयार्थ – **रूपादौ** रूप आदि इन्द्रियों के विषय, (उनके) **गुण-दोषादि-विकल्पाः** गुण-दोष आदि भाव (लक्षण) – (ये) **बुद्धिगाः** बुद्धि के द्वारा होनेवाले **क्रियाः** कार्य हैं; **चितिः** शुद्ध चैतन्य – **ताः** उन **विषयैः** विषयों के **सार्धं** साथ **क्रियाः** (मन की) क्रियाओं को **भासयन्ती** प्रकाशित करता है – **मता** ऐसा मानते हैं।

भावार्थ – रूप आदि इन्द्रियों के विषय, (उनके) गुण-दोष आदि भाव (लक्षण) – ये बुद्धि के द्वारा होनेवाले कार्य हैं; शुद्ध चैतन्य – उन विषयों के साथ (मन की) क्रियाओं को प्रकाशित करता है – ऐसा मानते हैं।

– टीका –

बुद्धिगाः क्रियाः मनोव्यापाराः रूपादौ विषये गुण-दोषादीन् विकल्पयन्ति। ताः गुण-दोषादि-विकल्पाः भवन्ति रूपादि-विषये, इदं समीचीनम् इदम् असमीचीनम् इति कल्पनं मनो-व्यापार-कृतम् इत्यर्थः। न तु चैतन्य-कृतम्। तस्य निर्विकारत्वात् ताः क्रियाः तान् मनो-व्यापारान् विषयैः रूपादिभिः सार्धं भासयन्ती प्रकाशयन्ती चितिः निर्विकारा मता। एतेन स्वयंप्रकाश-रूपायाः चितेः असत् जड-परिच्छिन्न-रूपैः अन्तःकरणादि धर्मैः सविकारता न सम्भवन्ति इति प्रतिपादितम् ।।

भावार्थ – मन की क्रियाएँ बुद्धि के कार्य हैं और वे ही रूप आदि विषयों में गुण-दोषों की कल्पना किया करती हैं। तात्पर्य यह कि उन गुण-दोषों के लक्षणों से युक्त 'रूप' आदि विषयों में ही – 'यह समीचीन है' 'यह असमीचीन है – आदि (सारी) कल्पनाएँ मन के द्वारा सम्पन्न होती हैं। वे चैतन्य के द्वारा नहीं होतीं। उस (चैतन्य) के निर्विकार होने के कारण, बुद्धि की सारी क्रियाएँ मन के रूप आदि क्रियाओं के साथ प्रकाशित होती हैं। अतः चैतन्य को निर्विकार मानना चाहिये। इस प्रकार यह सिद्ध हो जाता है कि स्वयंप्रकाश चैतन्य का असत्, जड़ तथा परिच्छिन्न अन्तःकरण आदि के गुणों द्वारा विकारी होना सम्भव नहीं है।।७।।

रूपाच्च गुणदोषाभ्यां विविक्ता केवला चितिः ।
सैवानुवर्तते रूपरसादीनां विकल्पने ।।८ ।।

अन्वयार्थ – **केवला** शुद्ध **चितिः** चैतन्य – **रूपात्** रूपों (विषयों) से **च** तथा **गुण-दोषाभ्याम्** गुण-दोषों के भाव से **विविक्ता** भिन्न (पृथक्) है; **रूप-रसादीनाम्** रूप, रस आदि के **विकल्पने** पृथक्करण (भिन्नता की धारणा) में (प्रकाशक तथा साक्षी के रूप में) **सा एव** वही **अनुवर्तते** पीछे विद्यमान रहता है।

भावार्थ – शुद्ध चैतन्य – रूपों (विषयों) तथा गुण-दोषों के भाव से भिन्न (पृथक्) है; रूप, रस आदि के पृथक्करण (भिन्नता की धारणा) में (प्रकाशक तथा साक्षी के रूप में) वही पीछे विद्यमान रहता है।

– टीका –

किंच सा एव चितिः केवला निरुपाधित्वात् स्वयं-प्रकाशा अपि रूपादि-विषयात् तत्रत्याभ्यां गुणदोषाभ्यां च विविक्ता भिन्ना सती, रूप-रसादि-विषयाणां विकल्पने पृथक्त्व-ग्रहणे अन्तःकरणादि-उपाधि-वशात् अनुवर्तते, न स्वतः शुद्ध-चैतन्यस्य विकाराभावात् इति भावः। तत् उक्तं

योगवासिष्ठे –

'येन शब्दं रसं रूपं गन्धं जानासि राघव।
तमात्मानं परं ब्रह्म जानीहि परमेश्वरम्' इति।।

'अत्रायं पुरुषः स्वयंज्योतिर्भवति' इत्यादि श्रुतयः आत्मनः स्वयंप्रकाशत्वं बोधयन्ति इत्यर्थः।।

भावार्थ – और, वह चैतन्य सत्ता – जो शुद्ध, निरुपाधिक, स्वयंज्योति, रूप आदि विषयों तथा उनके समस्त गुणों से पृथक् भाव से स्थित है – वह रूप, रस आदि विषयों से पृथक् हो जाने पर अन्तःकरण आदि उपाधियों का ही अनुसरण करती है; परन्तु वह अपने स्वभाव से नहीं, अपितु शुद्ध चैतन्य के अविकारी होने के कारण ऐसा करती है। योग-वासिष्ठ में कहा है – 'हे राघव, जिस (तत्त्व) के द्वारा तुम शब्द, रस, रूप, गन्ध आदि को जानते हो; उसी को परम ब्रह्म परमात्मा समझना।' इस प्रसंग में श्रुति 'यह पुरुष स्वयंज्योति होता है'[१] आदि वाक्यों के द्वारा आत्मा का स्वयंप्रकाशत्व समझाती है॥८॥

क्षणे क्षणेऽन्यथाभूता धीविकल्पाश्चितिर्न तु।
मुक्तासु सूत्रवद्-बुद्धिविकल्पेषु चितिः स्थिता।।९।।

अन्वयार्थ – **धी-विकल्पाः** बुद्धि की वृत्तियाँ **क्षणे क्षणे** प्रतिक्षण **अन्यथाभूताः** अन्य प्रकार की हो जाती हैं, **तु** परन्तु **न चितिः** चैतन्य नहीं; **चितिः** चैतन्य **मुक्तासु** मोतियों के भीतर **सूत्रवत्** सूत के समान (इन) **बुद्धि-विकल्पेषु** बुद्धि की वृत्तियों के भीतर **स्थिताः** स्थित है।

भावार्थ – बुद्धि की वृत्तियाँ (कल्पनाएँ) प्रति क्षण (रूपान्तरित होकर) अन्य प्रकार की हो जाती हैं, परन्तु मोतियों के भीतर स्थित सूत के समान बुद्धि की कल्पनाओं के भीतर स्थित चैतन्य में कोई परिवर्तन नहीं आता।

– टीका –

धी-विकल्पाः बुद्धि-वृत्तयः प्रति-क्षणम् अन्यथा-भूताः परिणामिनो दृश्यन्ते चितिः तु न तथा, कुतः, परिणामाभावात् आत्मचैतन्यस्य, तद् एव दृढयति मुक्ता-फलेषु यथा सूत्रम् अनुस्यूतम्, एवं बुद्धि-वृत्तिषु चितिः अनवरतम् अनुस्यूतत्वेन स्थिता। एतेन जड-परिणामि-दृश्येभ्यः बुद्धिवृत्तिभ्यः चिदानन्द-घनम् अपरिच्छिन्नं साक्षि-स्वरूपं भिन्नं विद्यते इति ज्ञेयम्।।

भावार्थ – बुद्धि द्वारा कल्पित चित्त की वृत्तियाँ प्रतिक्षण बदलती हुई परिणामी दीख पड़ती हैं, परन्तु शुद्ध चैतन्य में ऐसा नहीं होता। क्यों? आत्म-चैतन्य में परिणाम का अभाव होता है। अब उसी (तत्त्व) को और भी दृढ़ किया जा रहा है – जैसे (मुक्ता की माला में) मोतियों के भीतर सूत अनुस्यूत (पिरोया हुआ) होता है, वैसे ही बुद्धि-वृत्तियों के भीतर चैतन्य भी निरन्तर अनुस्यूत (व्याप्त) होता है। इससे जान लेना चाहिये कि चैतन्यघन, असीम, साक्षी-स्वरूप आत्मा – जड़ तथा परिणामी दृश्यों तथा बुद्धि-वृत्तियों से पृथक् रूप में विद्यमान होता है॥९॥

१. बृहदारण्यक उपनिषद्, ४/३/९

मुक्ताभिरावृतं सूत्रं मुक्तयोर्मध्य ईक्ष्यते।
तथावृता विकल्पैश्चित् स्पष्टा मध्ये विकल्पयोः।।१०।।

अन्वयार्थ – (जैसे) **मुक्ताभिः** मोतियों से **आवृतं** ढँका हुआ **सूत्रं** धागा **मुक्तयोः** दो मोतियों के **मध्ये** बीच में **ईक्ष्यते** दीख पड़ता है, **तथा** वैसे ही **विकल्पैः** बुद्धि-वृत्तियों से **आवृता** ढँका हुआ **चित्** शुद्ध चैतन्य **विकल्पयोः** दो बुद्धि-वृत्तियों **मध्ये** के बीच **स्पष्टा** स्पष्ट रूप से **प्रकाशते** प्रकाशित होता रहता है।

भावार्थ – (जैसे) मोतियों से ढँका हुआ धागा दो मोतियों के बीच से दीख पड़ता है, वैसे ही बुद्धि-वृत्तियों से ढँका हुआ शुद्ध चैतन्य दो बुद्धि-वृत्तियों के बीच स्पष्ट रूप से प्रकाशित होता रहता है।

– टीका –

तद् एव शुद्ध-चैतन्यात्मकं कूटस्थ-स्वरूपं युग्मेन स्पष्टम् उपपादयति–मुक्ताभिरिति। यथा मुक्ताभिः आवृतम् आच्छादितम् सूत्रं मुक्तयोः द्वयोः मुक्ता-फलयोः मध्ये ईक्ष्यते स्पष्टं भासते प्रकाशते, तथा विकल्पैः बुद्धि-वृत्तिभिः आवृता आच्छादिता चित् कूटस्थ-चैतन्यं विकल्पयोः बुद्धि-वृत्त्योः मध्ये स्पष्टा सती प्रकाशते। तद् उक्तं विद्यारण्य-श्रीपादैः पंचदशप्रकरण्याम् –

'सन्धयोऽखिल-वृत्तीनामभावाश्चावभासिताः।
निर्विकारेण येनासौ कूटस्थ इति चोच्यते।।

अतः बुद्धि-वृत्ति-सन्धिषु साक्षि-शुद्ध-चैतन्यानुभवः भवति इति भावः।।

भावार्थ – उसी शुद्ध चैतन्यात्मक कूटस्थ-स्वरूप को संयुक्त रूप से 'मुक्तादिभिः' आदि के द्वारा स्पष्ट रूप से प्रस्तुत करते हैं। जैसे मोतियों से ढँकी हुई सूत दो मोतियों के बीच स्पष्ट रूप से दीख पड़ती है, वैसे ही विपरीत बुद्धि-वृत्तियों द्वारा आच्छादित शुद्ध-कूटस्थ-चैतन्य सत्ता दो बुद्धि-वृत्तियों के बीच स्पष्ट रूप से प्रकाशित होती रहती है। उसी को श्रीपाद विद्यारण्य स्वामी ने 'पंचदशी' नामक प्रकरण ग्रन्थ में लिखा है – 'समस्त वृत्तियाँ और उनका अभाव – इन दोनों के मध्य काल में जो अविकृत भाव से प्रकाशित होता है, उसी को कूटस्थ[२] कहते हैं' (पंचदशी, ८/२१)। तात्पर्य यह कि बुद्धि-वृत्तियों के सन्धि-स्थान में साक्षी-शुद्ध-चैतन्य का अनुभव होता रहता है॥१०॥

२. कूटस्थ अर्थात् कूट पर स्थित। लोहार जिस 'निहाई' पर गरम लोहे को रखकर कूटता है, उसे 'कूट' कहते हैं। सैकड़ों चोट खाने के बाद भी उस निहाई में कोई विकृति नहीं आती, उसी प्रकार संसार के समस्त विकारों के बीच वह शुद्ध चैतन्य अविकृत रूप से विद्यमान रहता है।

भगवन्नाम-छाता से दुख-वर्षा से बचें

स्वामी सत्यरूपानन्द
सचिव, रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर

मनुष्य में सब प्रकार का अहंकार रहता है। इससे अच्छा है कि भक्ति का अहंकार रखें। अहंकारशून्य तो केवल महापुरुष ही रहते हैं। अहंकार न हो और भगवान में प्रेम हो, इसलिये नाम-स्मरण, पूजा-पाठ, भगवद्-आराधना आदि करते रहें। संसार का आवश्यक काम करते रहना, लेकिन भगवान का नाम भी लेना है। काम करते-करते भगवान का नाम लेंगे और भजन गाते रहेंगे, तो ऐसा करते-करते हमें आदत हो जायेगी और उसके बिना हम नहीं रह पायेंगे। हमारे अच्छे-बुरे सभी कर्म भगवान देखते रहते हैं। हमें सभी कर्मों का फल मिलता ही रहता है। शुभकार्य करने से अशुभ वृत्तियाँ निकल जाती हैं। भगवान का नाम लेने से मनुष्य सजग हो जाता है। ठाकुरजी कहते हैं, हमेशा अच्छे विचार करो, मन को बुरे कर्म करने के लिए छूट नहीं देनी चाहिए। भगवान का नाम पुकारने से मन शुद्ध हो जाता है। छोटी-छोटी चीजों में, बातों में सावधानी रखनी चाहिए। आध्यात्मिक जीवन में सतत सावधान रहना चाहिए। सावधान न रहने से माया हमको पकड़ लेती है। जीवन की सफलता में सावधानी अत्यन्त आवश्यक है। जब तक जीयेंगे, तब तक सावधानी रखनी है। इसके लिये सतत भगवान का नाम-जप और प्रार्थना करनी है। यदि हमें यह स्वाभिमान रखना है कि हम ठाकुरजी के भक्त हैं, तो हमें अच्छा आचरण करना है। बुरा आचरण करेंगे, तो हम ठाकुर जी के सच्चे भक्त नहीं हैं।

भगवान के नाम से सद्वृत्तियाँ स्वयं आ जाती हैं। मोह भगवान से दूर करता है। अत: मोह में नहीं पड़ना है। हम सावधान रहें, तो सारी विपत्तियाँ कट जाती हैं। अन्तर्मुखी होना ही आध्यात्मिकता है। हमें ऐसा नियम बनाना चाहिए कि भोजन के पहले हम १०८ बार जप करेंगे, तब भोजन करेंगे। दृढ़ इच्छा होने से नियम बन जाता है और उसके लिये समय भी मिलता है।

हमारे हृदय में उठने वाले निरन्तर विचार हमें कभी भी भगवान के पास जाने नहीं देते, यही माया है। हमारे मन में शुभ-अशुभ दोनों विचार आते रहते हैं। अत: मन से अशुभ भाव को दूर करना चाहिए और शुभ भाव को पुष्ट करना चाहिए। जब तक विचारों का मन से सम्बन्ध है, तब तक माया ही है। इसलिए आचार्य कहते हैं, मन के द्रष्टा बनो। हमें अपने मन को स्वयं समझने का प्रयत्न करना चाहिए। यह शरीर नश्वर है, हम जानते हैं, पर कब जायेगा यह भगवान को ही मालूम है। इसलिए हम सुखी हैं, मालूम रहता तो बहुत दुख होता। इसीलिये भगवान के शरणागत होकर रहना ही अच्छा है। जीवन में शान्ति से रहने के लिए श्रीरामकृष्ण-वचनामृत हमारे जीवन की बड़ी सहायता करता है। इससे हमारी आवश्यकता की पूर्ति हो जायेगी।

संसार में हम देखते हैं कि बारिश में छाता हमारी सहायता करता है। वैसे ही भगवान का नाम छाता है और दुख है बारिश। भगवान के नाम का छाता हमारी दुख रूपी बारिश से रक्षा करेगा। इसलिये जब सतत भगवान का नाम हम लेंगे, तभी हम सुखी रहेंगे। हमको जाना कहाँ है? हमारा लक्ष्य क्या है? यह सोचना चाहिए। हमें इसी जन्म में मुक्त होना है। आवागमन के चक्र से छूटना ही मुक्ति है। आने-जाने का झंझट हमारी इच्छाओं के कारण है। जहाँ तक हो, वर्तमान में रहें और सत्कार्य में लगे रहें, दूसरों की सेवा, सहायता करें।

जहाँ भगवान का नाम लिया जाता है, जहाँ सत्संग होता है, वह जगह शुद्ध और पवित्र होती है, वही जगह साधना के लिए अच्छी है । भगवान ने हमें जहाँ और जैसा भी रखा है, उसमें संतुष्ट रहना ही अच्छा है। संसार में असुविधाओं में भी भगवान का स्मरण करें, तो हमारी कठिनाई कम हो जायेगी। अपनी आवश्यकताओं के साथ सामंजस्य करेंगे, तो आपको कभी असुविधा नहीं होगी। पुरुषार्थ करते रहो। यहाँ किसी का कोई नहीं है, केवल भगवान ही अपने हैं। शुद्ध मन ही हमारा मित्र है। जहाँ सुख है, वहाँ दुख भी है। जहाँ भोग है, वहाँ रोग भी है। भगवान के नाम मात्र से ही हम करोड़ों दुखों को भूल जाते हैं और सुख की अनुभूति होने लगती है। ○○○

मेरे वीर-हृदय युवको ! विश्वास रखो कि तुम सबका जन्म अनेक महान कार्य करने के लिए हुआ है। कुत्तों के भौंकने से डरो मत – नहीं, स्वर्ग के वज्र से भी मत डरो। उठकर खड़े हो जाओ और कार्य में लगे रहो।

– स्वामी विवेकानन्द

रामकृष्ण संघ के संन्यासियों का दिव्य जीवन (२८)

स्वामी भास्करानन्द

(रामकृष्ण संघ के महान संन्यासियों के जीवन के प्रेरणाप्रद प्रसंगों की सरल, सरस और सारगर्भित प्रस्तुति स्वामी भास्करानन्द जी महाराज, मिनिस्टर-इन-चार्ज, वेदान्त सोसायटी, वाशिंग्टन ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'Life in Indian Monasteries' में की है। 'विवेक ज्योति' के पाठकों हेतु इसका हिन्दी अनुवाद रामकृष्ण मिशन आश्रम, भोपाल के ब्रह्मचारी चिदात्मचैतन्य ने किया है। – सं.)

स्वामी शंकरानन्द और कोलकता के दो चतुर युवक

शास्त्र हमें तन्मात्राओं के विषय में बतलाते हैं। मानव के शरीर से प्रसारित ये अदृश्य कण अति सूक्ष्म होते हैं। पुष्पों के सूक्ष्म सुगन्ध के साथ तन्मात्राओं की तुलना की जा सकती है। पुष्पों के चारों ओर एक अदृश्य सुगन्ध विद्यमान रहती है। जब आप उस परिवेश में जाते हैं, तो आपको उस सुगन्ध का अनुभव होता है।

पुष्पों के ही जैसे प्रत्येक व्यक्ति के चारों ओर उसकी तन्मात्राएँ विद्यमान रहती हैं। तन्मात्राओं में व्यक्ति के गुण एवं विशिष्टताएँ विद्यमान रहते हैं। सज्जन व्यक्ति से प्रसारित तन्मात्राएँ सद्वृत्ति की होती हैं, दुर्जन व्यक्ति से प्रसारित तन्मात्राएँ दुष्ट-प्रवृत्ति की होती हैं। इसीलिये हिन्दू-शास्त्र साधु-संग को बहुत महत्त्वपूर्ण कहते हैं। जब कोई व्यक्ति साधु-प्रकृति वाले व्यक्ति के पवित्र तन्मात्राओं के सान्निध्य में आता है, तो वे तन्मात्राएँ उस व्यक्ति को प्रेरित करती हैं, यहाँ तक कि उसके मन को उच्च आध्यात्मिक स्तर पर ले जा सकती हैं।

स्वामी शंकरानन्द

स्वामी शंकरानन्द जी महाराज (१८८०-१९६१) उस समय रामकृष्ण संघ के संघाध्यक्ष थे। वे गोरे, ऊँचे कद और चौड़े कन्धों वाले थे एवं आध्यात्मिक ज्योति से पूर्ण उनकी बड़ी-बड़ी आँखें थीं। सत्तर वर्ष से भी अधिक उम्र होने के बावजूद उनका आध्यात्मिक व्यक्तित्व इस प्रकार का था कि बहुत कम व्यक्ति उनके साथ वार्तालाप करने का साहस कर पाते थे। वे लोग शंकरानन्द महाराज के वार्तालाप प्रारम्भ करने तक प्रतीक्षा किया करते थे।

प्रतिदिन सन्ध्या के पूर्व, लगभग एक घण्टा या अधिक समय के लिए संन्यासियों एवं भक्तों को महाराज के कमरे में जाने और प्रणाम करने की अनुमति थी। एक दिन जब प्रणाम करने का समय समाप्त हो गया और शंकरानन्द महाराज का कमरा बन्द कर दिया गया, तब कोलकाता से दो युवक आये। वे दोनों स्वामी शंकरानन्द का दर्शन करना चाहते थे। उन्हें बड़ी विनम्रता से बताया गया कि प्रणाम करने का समय समाप्त हो गया है तथा वे लोग अभी महाराज का दर्शन नहीं कर सकते। लेकिन ये दोनों युवक कोलकाता के चालाक थे। वे दोनों किसी भी प्रकार से वापस जाने के लिए सहमत नहीं हुये। वे लोग उत्तेजित होकर शोर-गुल करने लगे। उन लोगों ने कहा कि उन्हें संघाध्यक्ष महाराज से रामकृष्ण संघ के विषय में बहुत सी शिकायतें करनी हैं, इसलिये उनसे शीघ्र मिलने दिया जाय।

अन्त में महाराज के सेवक उन दोनों को स्वामी शंकरानन्द महाराज के कमरे में ले गये। जैसेही उन लोगों ने कमरे में प्रवेश किया, वे लोग साक्षात् शंकरानन्द महाराज की आध्यात्मिक तन्मात्राओं से अभिभूत हो गये। एकाधिक मिनट के लिये वे लोग वहाँ सम्मोहित एवं अवाक् होकर खड़े रहे। उन लोगों ने एक शब्द कहे बिना, झुककर महाराज को प्रणाम किया और शान्ति से कमरे से निकल गये।

स्वामी निर्वेदानन्द - एक शिक्षक का संन्यासी में रूपान्तरण

स्वामी निर्वेदानन्द (१८९३-१९५८) रामकृष्ण संघ में संन्यासी बनने के पूर्व सुरेन के नाम से जाने जाते थे। जब उनकी उम्र बहुत कम थी, तभी उन्होंने अपने जीवन का लक्ष्य निर्धारित कर लिया था। उन्होंने आजीवन अविवाहित रहकर सम्पूर्ण जीवन लोकोपकारी कार्यों में व्यतीत करने का निर्णय लिया। उन्होंने विश्वविद्यालयीय शिक्षा के बाद कोलकता में युवकों के लिए एक छोटा-सा छात्रावास प्रारम्भ किया।

स्वामी निर्वेदानन्द

विद्यार्थियों को छात्रावास में नि:शुल्क निवास एवं भोजन दिया जाता था तथा विद्यार्थी निकट के विभिन्न शैक्षणिक

संस्थानों में अध्ययन करते करते थे। स्वामी निर्वेदानन्द छात्रावास-अधीक्षक थे। वे विद्यार्थियों को आवश्कतानुसार अतिरिक्त शिक्षण (tutoring) भी देते थे। इस प्रकार वे 'सुरेन मास्टर' के नाम से प्रसिद्ध हो गये।

एक बार विद्यार्थीगण सुरेन मास्टर की अनुमति से दक्षिणेश्वर दर्शन करने के लिए गये। सुरेन मास्टर ने विद्यार्थियों को उस समय बेलूड़ मठ नहीं जाने के लिए कहा। वे नहीं चाहते थे कि विद्यार्थी बेलूड़ मठ जाकर संन्यासियों को परेशान करें। लेकिन विद्यार्थी उनकी अवज्ञा कर बेलूड़ मठ दर्शन करने के लिए चले गये। वहाँ स्वामी विवेकानन्द के एक शिष्य ब्रह्मचारी ज्ञान महाराज से उन लोगों की भेंट हुई। ज्ञान महाराज बहुत मिलनसार थे और उनसे युवा, वृद्ध सभी बहुत सहजता का अनुभव करते थे। विद्यार्थियों से महाराज की दीर्घ काल तक बात हुई। वार्तालाप के दौरान ज्ञान महाराज ने विद्यार्थियों से कहा, "अपने मास्टर को बेलूड़ मठ दर्शन करने के लिए कहना।"

यद्यपि विद्यार्थियों ने सुरेन मास्टर की अवज्ञा की थी, लेकिन वे कपटी नहीं थे। उन लोगों ने छात्रावास वापस आकर अपने अधीक्षक सुरेन मास्टर को बताया कि वे उनकी बात न मानकर बेलूड़ मठ दर्शन करने के लिए चले गये थे। उन लोगों ने मास्टर को यह भी बताया कि ब्रह्मचारी ज्ञान महाराज ने उनको बेलूड़ मठ का दर्शन करने के लिए निमन्त्रण दिया है। सारी घटना सुनने के बाद सुरेन मास्टर ने सोचा, "जब ब्रह्मचारी ज्ञान महाराज ने मुझे अपने पास बुलाया है, तो मुझे वहाँ जाकर बेलूड़ मठ का दर्शन करना चाहिए।"

लेकिन इस घटना के साथ ही, मैं एक अन्य घटना बताना चाहता हूँ, जो इस घटना से बहुत सम्बद्ध है। कुछ दिनों पूर्व सुरेन मास्टर एक ऐसे अन्तर्द्वन्द्व से दुखित थे, जिसका वे समाधान नहीं कर पा रहे थे। उनका अन्तर्द्वन्द्व अपने जीवनादर्श को लेकर था। आध्यात्मिक जीवन से सम्बन्धित कुछ गूढ़ प्रश्न उनके मन को अशान्त किये हुए थे, जिनका समाधान वे स्वयं करने में असमर्थ थे। निराश होकर उन्होंने लीक से हटकर कुछ करने का निश्चय किया। उनके कमरे की दीवार में श्रीकृष्ण भगवान का चित्र था। उन्होंने उत्तर पाने की आशा में अपने सभी प्रश्नों को एक कागज पर लिखा और उसे मोड़कर श्रीकृष्ण भगवान के चित्र के नीचे रख दिया।

विद्यार्थियों के बेलूड़ मठ दर्शन करके आने के बहुत दिनों के पश्चात् सुरेन मास्टर ज्ञान महाराज से भेंट करने के लिए बेलूड़ मठ गये। लेकिन जैसे ही वे उस मठ-प्रांगण में पहुँचे, उनकी भेंट बेलूड़ मठ के प्रबंधक स्वामी प्रेमानन्द . जी से हुई।

स्वामी प्रेमानन्द जी (१८६१-१९१८) ने सुरेन का बड़े सौहार्द एवं प्रेम से स्वागत किया। वे दोनों मठ-प्रांगण में बैठकर वार्तालाप करने लगे। वार्तालाप के दौरान, प्रेमानन्दजी महाराज स्वयं सुरेन के बिना पूछे ही उनके सभी प्रश्नों को कहने लगे, जिनको सुरेन ने अपने कमरे में कागज पर लिख कर रखा था। तदनन्तर प्रेमानन्द महाराज ने जिस क्रम से प्रश्नों को लिखा गया था, उसी क्रम से उन सभी प्रश्नों का एक-एक करके उत्तर दिया। सुरेन पूर्णत: आश्चर्यचकित हो गये। तब से सुरेन बारम्बार बेलूड़ मठ जाने लगे।

अन्तत: सुरेन स्वामी शिवानन्द महाराज से मिले और उनके प्रति अत्यधिक आकर्षित हुए। एक दिन, जब सुरेन स्वामी शिवानन्द के साथ थे, तभी रामकृष्ण संघ के संघाध्यक्ष स्वामी ब्रह्मानन्द महाराज ने कमरे में प्रवेश किया। उन्होंने सुरेन को देखकर स्वामी शिवानन्द से कहा, "तारक दा, क्या आप इस युवक को उपहार में मुझे दे सकते हैं?"

शिवानन्द महाराज ने कहा, "अवश्य ही आप इसे ग्रहण कर सकते हैं ! वह आपके अधिकार में है।"

तब ब्रह्मानन्द महाराज ने कहा, "यह अच्छा नवयुवक है। मैं इसको अपना शिष्य बनाऊँगा।" यहाँ उल्लेखनीय है कि स्वामी ब्रह्मानन्द महाराज किसी को भी अपना शिष्य बनाने के लिए बहुत आसानी से सहमत नहीं होते थे। बहुत सावधानी से निरीक्षण करने के बाद ही वे सहमत होते थे। अपने दिव्य चक्षु से उन्होंने अवश्य ही सुरेन में अन्तर्निहित आध्यात्मिक शक्ति को देखा होगा। इसीलिये वे सुरेन को अपने शिष्य के रूप में चाहते थे। कुछ दिनों के बाद ब्रह्मानन्दजी ने सुरेन को मन्त्र-दीक्षा प्रदान की। वे रामकृष्ण संघ में सम्मिलित हुये और संन्यास-दीक्षा के बाद स्वामी निर्वेदानन्द के नाम से प्रसिद्ध हुये। मैंने उपरोक्त घटना स्वामी बोधात्मानन्द से सुनी थी।

स्वामी निर्वेदानन्द कई दशक पहले महासमाधि में लीन हो गये, लेकिन हमारा संघ अभी भी उनको एक महान् आचार्य तथा श्रेष्ठ प्रेमिक सन्त के रूप में स्मरण करता है। एक बार बेलूड़ मठ में स्वामी गम्भीरानन्द जी ने हममें से कुछ लोगों से कहा था, "यदि अब तक स्वामी निर्वेदानन्द जीवित होते, तो हमारे संघ के श्रेष्ठ संघाध्यक्ष होते।" **(क्रमशः)**

श्रीमत्सुरेश्वराचार्यविरचिता

नैष्कर्म्यसिद्धिः

व्याख्याकार : स्वामी धीरेशानन्द, सम्पादन : स्वामी ब्रह्मेशानन्द

दूसरे से छठे श्लोक तक का सारांश

गुरु-परम्परा प्राप्त शिक्षा ही फलवती तथा दृढ़ होती है। ग्रंथकार इन श्लोकों में यह बताते हैं कि जो विद्या उन्होंने प्राप्त की है, वह गुरुप्रदत्त है। दूसरे श्लोक में गुरु को नमस्कार किया गया है - तर तम आदि विशिष्टता बतलाने वाले प्रत्यय और कोई आश्रय प्राप्त न कर जिन गुरु में प्रतिष्ठित हुए हैं, उन अविद्यारूप ग्रन्थि का भेद करने वाले गरीयान् गुरु को प्रणाम करता हूँ ।।२।।

वेदान्त के उदर में निगूढ़, अर्थात् अशुद्ध बुद्धि वालों द्वारा अप्राप्त, संसार का उच्छेद करने वाला द्वैत कल्पना का अधिष्ठान, आत्मतत्त्व के विषय वाला ज्ञान बहुत से ग्रन्थों में वर्णित होने पर भी गुरु की आज्ञा से उसका कथन करुँगा ।।३।।

शंका – ब्रह्म तो ग्रन्थ का विषय नहीं हो सकता, क्योंकि विषय तो वही हो सकता हो, जो सामान्यत: सिद्ध हो, किन्तु विशेषत: सिद्ध न हो। पर ब्रह्म में सामान्य-विशेष, यह भेद नहीं है। इसका उत्तर चौथे श्लोक में है। जिस आत्मतत्त्व की स्फुटतर सिद्धि होने से समस्त जड़ पदार्थ की सिद्धि होती है, वह सच्चिदात्मरूप ब्रह्म सभी को सामान्य रूप से सिद्ध है। किन्तु, सर्वप्रपंचविभ्रम अधिष्ठान नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्त, अद्वितीय आनन्द लक्षण असाधारण आकार से असिद्ध है। अत: ब्रह्म प्रकरण का विषय हो सकता है। वह आत्मा प्रत्यग् धर्मा है, अर्थात् देहादि से पृथक है, बहिर्जगत का साक्षी तथा बाह्य जगत को धारण करने के कारण उसका अधिष्ठान है। ऐसे आत्मा का यथार्थ स्वरूप इधर-उधर, शारीरक आदि में विस्तार से वर्णित भले हो, पर यहाँ संक्षेप में स्पष्ट रूप से कहेंगे।।।४।।

गुरु ने जो उपदेश दिया है वह अनुक्त, दुरुक्त से रहित वेदान्त सिद्धान्त का ही उपदेश है। अत: मैं शक्तिहीन उससे अधिक और कुछ नहीं कहूँगा। आखिर सूर्य की सहस्त्र किरणों से प्रकाशित आकाश को जुगनू भला क्या प्रकाशित कर सकता है ।।५।।

ख्यातिलाभ, पूजा, नामादि के लिए लिखा गया ग्रन्थ अप्रमाणित होता है। गुरु द्वारा सर्व-वेदान्त-सिद्धान्त कथित होने पर भी इस ग्रन्थ का उपरोक्त स्वार्थपरक प्रयोजन नहीं है। यह ग्रन्थ तो स्वयं के ज्ञान-बोध की ब्रह्मवित् जनों के ज्ञानरूपी कसौटी पर परीक्षा के लिये कहा जाता है।

७वाँ श्लोक

ऐकात्म्याऽप्रतिपत्तिर्या स्वात्मानुभवसंश्रया।
साऽविद्या संसृतेर्बीजं तन्नाशो मुक्तिरात्मनः।।

स्वात्म-अनुभव जिसका आश्रय है, ब्रह्म-आत्मा के ऐक्य की अप्रतिपत्ति जो अविद्या है, वह संसार के आवागमन का बीज या कारण है। इसका (अविद्या का) नाश ही आत्मा की मुक्ति है।

इस प्रकरण ग्रन्थ में चार प्रमुख विषय वर्णित हैं, जिन्हें सातवें तथा आठवें श्लोक में बताया गया है। (१) अनर्थ (२) अनर्थ का हेतु (३) पुरुषार्थ (४) पुरुषार्थ का हेतु।

एक अद्वितीय आत्मा का भाव ऐकात्मा कहलाता है। उसकी अप्रतिपत्ति अज्ञान के कारण होती है। वही अविद्या है। यह स्वात्मा को आश्रय करके रहती है।

स्व शब्द द्वारा अहंकारादि आत्माओं का निषेध तथा प्रत्यगात्मा को कहा गया है। आत्मा अनुभव स्वरूप ही है। आत्मा अज्ञान का आश्रय है, तथा उसका विषय भी है। यह अज्ञान या अविद्या कर्तृत्वादि लक्षण युक्त संसार की बीज या उपादान है। यह संसार अनर्थ है तथा अविद्या उस अनर्थ का हेतु है।

श्लोक के अन्तिम पाद में पुरुषार्थ कहा गया है। इस अविद्या का नाश ही मुक्ति है तथा यही पुरुषार्थ है। यह न तो भावरूप है और न अभावरूप, केवल अविद्या की निवृत्ति मात्र है। आत्मा तो स्वभाव से ही नित्यमुक्त है। नित्यप्राप्त की प्राप्ति ज्ञान से होती है। कल्पित की निवृत्ति अधिष्ठान रूप ही होती है – **अधिष्ठानावशेषेहि नाशः कल्पितवस्तुनः। (क्रमशः)**

तुम जो कुछ भी सोचोगे, वही हो जाओगे। यदि तुम अपने को दुर्बल समझोगे, तो दुर्बल हो जाओगे; बलवान सोचोगे, तो बलवान हो जाओगे।

– स्वामी विवेकानन्द

धैर्य-निष्ठा-विश्वास की हार नहीं होती

डॉ. शरत् चन्द्र पेंढारकर

जगदीशचन्द्र बसु कलकत्ता विश्वविद्यालय में विज्ञान के अध्यापक थे। जब उन्हें मालूम हुआ कि विश्वविद्यालय में कुछ ऐसे अंग्रेज अध्यापक हैं, जिनकी शैक्षणिक योग्यता उनसे कम होते हुए भी उनका वेतन अधिक है, तो उन्होंने शिक्षाधिकारी को पत्र लिखकर उन अंग्रेज अध्यापकों के समान ही वेतन देने का अनुरोध किया। तीन स्मरण-पत्र भेजने पर भी जब वेतन नहीं बढ़ा, तो उन्होंने शिक्षाधिकारी से स्वयं मिलकर उनके साथ हो रहे भेद-भाव, अन्याय का विरोध किया। इसका कोई प्रभाव न देख उन्होंने धमकी दी, जब तक उचित वेतन नहीं मिलेगा, वे वेतन नहीं लेंगें।

अगले माह जब उन्हें पुराने वेतन का चेक मिला, तो उन्होंने उसे वापस कर दिया। अगले दो महीनों के चेक भी उन्होंने वापस कर दिये। बिना वेतन का गुजारा कैसे होता? मकान-किराया भी देना था। इसलिए उनकी पत्नी अबला ने अपने जेवर देकर गिरवी रखने के लिए कहा। जेवर गिरवी रखने पर प्राप्त रकम से वे घर-खर्च चलाने लगे। मकान का किराया अधिक होने से वे एक कमरेवाला मकान लेकर उसमें रहने लगे।

विश्वविद्यालय जाने के लिए उन्हें नाव में बैठकर नदी पाकर करनी पड़ती थी। नाव का किराया उन्हें अधिक लगा, तो एक दिन उन्होंने पत्नी से कहा, ''क्यों न हम नदी के किनारे पड़ी टूटी नावों को सुधारकर नई नाव बना लें। पत्नी को यह सुझाव पसन्द आया। टूटी नावों की पाटियों को जोड़ उन्होंने कामचलाऊ नाव तैयार की। पत्नी अबला ने जाते समय नाव से उस पार पहुँचाने और शाम को उस पार से इस पार लाने का दायित्व लिया। इस प्रकार मितव्ययिता कर वे गुजारा करने लगे। वापस किये हुए चेक इकट्ठे होने लगे, तो शिक्षाधिकारी ने उनका वेतन बढ़ाया और नई दर से पुरानी रकम भी दी।

पति-पत्नी एक गाड़ी के दो पहिए माने जाते हैं। दोनों में परस्पर सन्तुलन होना आवश्यक है। पत्नी को पति की अनुगामिनी बनकर उसके कंधों से कंधा मिलाकर अपना दायित्व भलीभाँति निभाना चाहिए। जिस प्रकार नदी का जल मार्ग में पड़ने वाली शिलाओं से भयभीत न होकर व्यक्ति दृढ़ इच्छाशक्ति के साथ उन्हें लांघकर आगे बढ़ता जाता है, उसी प्रकार धैर्य, निष्ठा, विश्वास, साहस, मनोबल और परिश्रम के बलबूते मनुष्य मार्ग में आने वाली बाधाओं को पार कर सफलता की ओर अग्रसर होता है। अँग्रेजों ने जब 'फूट डालो और राज करो' की नीति अपनाई तथा मुसलमानों को हिन्दुओं के विरुद्ध भड़काना शुरू किया, तो यह बात पंडित मदनमोहन मालवीय को पसन्द नहीं आई। उन्होंने एक दिन कैबलपुर में एक सभा का आयोजन किया। उन्होंने ज्योंही 'मेरे प्यारे हिन्दू-मुस्लिम भाइयो' कहा, त्योंही एक मुसलमान सज्जन ने खड़े होकर कहा, ''जनाब, मेरी आपसे गुज़ारिश है कि आप हम मुसलमानों को कोई नसीहत न दें।'' इससे सारी सभा स्तब्ध रह गई। मालवीयजी थोड़ी देर तक शान्त रहे। फिर उन्होंने कहा, ''भाइयों, मैं आप लोगों की खिदमत करने के इरादे से कुछ अर्ज़ करना चाहता था, मगर एक हज़रत साहब ने मुझ पर पाबन्दी लगा दी है। इसलिए उनके हुक्म की तालीम करने का मेरा हक बनता है। हिन्दू-मुसलमानों में भेद करना मैं नाइन्साफी समझता हूँ।''

उन्होंने आगे कहा, ''मुसलमानों को न मालूम क्यों अलग-अलग माना जाता है। ये तो एक ही इन्सान की दो आँखें हैं, एक ही माँ के दो दुलारे हैं, एक ही पेड़ के दो फूल हैं। इनमें भला बड़ा-छोटा कोई कैसे हो सकता है? अगर बड़ा-छोटा हो, तो भी, जब छोटा जिद करेगा, तो बड़े को उसकी मांग पूरी करनी होगी। अगर बड़ा कुछ कहे, तो छोटे को उसकी बात माननी चाहिये। यही दोनों का बड़प्पन हुआ। अगर दोनों भाई ऐसा व्यवहार नहीं करेंगे, तो हमारा देश स्वतन्त्र कैसे होगा? आज़ादी के लिए हमें एक-दूसरे पर भरोसा करके एक-दूसरे को सच्चे दिल से गले लगाना होगा। कौमी एकता के लिए यह निहायत जरूरी है। इसी के कारण हम फिरंगियों को यहाँ से भगाने में सफल होंगे और अमन-चैन से रह सकेंगे।'' लोगों ने शान्ति से उनका भाषण सुना। तालियों की गड़गड़ाहट से सभागृह गूँज उठा। पंडितजी ने बड़ी चतुराई से हिन्दू-मुस्लिम की एकता का संदेश देने में सफलता प्राप्त की।

हिन्दू और मुस्लिमों के भले ही अलग धर्म, अलग रहन-सहन और प्रथाएँ हैं, किन्तु दोनों एक ही भगवान की संतान हैं। संतानों में भेद कैसा? उन्हें एक-दूसरे को घृणा की दृष्टि से नहीं देखनी चाहिए। यही घृणा एकता में बाधक बनती है। धार्मिक एकता ही राष्ट्र की अखंडता को सबल बनाती है। OOO

स्वामी विवेकानन्द के प्रिय गुडविन (२)

प्रव्राजिका व्रजप्राणा

(स्वामी विवेकानन्द की ग्रन्थावली का अधिकांश भाग गुडविन द्वारा लिपिबद्ध व्याख्यान-मालाएँ हैं। उनकी आकस्मिक मृत्यु पर स्वामीजी ने कहा था, "गुडविन का ऋण मैं कभी चुका नहीं सकूँगा।... उसकी मृत्यु से मैं एक सच्चा मित्र, एक भक्तिमान शिष्य तथा एक अथक कर्मी खो बैठा हूँ। जगत् में ऐसे अति अल्प लोग ही जन्म लेते हैं, जो परोपकार के लिये जीते हैं। इस मृत्यु ने जगत् के ऐसे अल्पसंख्यक लोगों की संख्या एक और कम कर दी है।" गुडविन के संक्षिप्त जीवन का अनुवाद पाठकों के लाभार्थ यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है। – सं.)

गुडविन के पिता जोशया गुडविन शिक्षित और कर्मकुशल थे। वे क्रमशः ब्रिमिंघम एडवर्टाइजर, द विल्स काउन्टी मिरर और एक्सर्टर गेजेट के सम्पादक थे। इंग्लैंड के उत्तर-पश्चिम में स्थित बाथ क्षेत्र के उपनगर बाथईस्टर्न में जोशया गुडविन और उनकी पत्नी स्थायी रूप से बस गए थे। सितम्बर, १८७० में जोशया जॉन गुडविन का जन्म हुआ, जिन्हें हम जे. जे. गुडविन के नाम से जानते हैं। जोशया दम्पती को मार्गरेटा नाम की बेटी भी हुई थी।

गुडविन के पिता जोशया गुडविन बाथ जर्नल के १८५९ से १८९० तक मृत्यु पर्यन्त सम्पादक रहे। उनका समाज में बहुत आदर था। उन्हें लिट्ररी एण्ड फिलोसोफिकल एसोसिएशन, द रॉयल लिट्ररी एण्ड साइन्टिफिक इंस्टिट्यूशन और बाथ सेन्टर ऑफ ऑक्सफॉर्ड एक्जामिनेशन का मानसेवी सचिव बनाया गया था। जोशया केवल अपनी कुशाग्र बुद्धि के लिए ही नहीं, अपितु विनम्रता, सहृदयता और दयालुता गुणों के लिए भी प्रसिद्ध थे। सचमुच एक आदर्श मनुष्य बनने के लिए जिन दुर्लभ गुणों की आवश्यकता होती है, वे सभी गुण उनमें थे।

ऐसा सोचना स्वाभाविक है कि जे. जे. गुडविन ने भी अपने पिता के विलक्षण सद्गुणों में से कुछ गुण विरासत में प्राप्त किए होंगे। किन्तु हम देखते हैं कि युवक गुडविन, '...स्वामीजी से मिलने के पूर्व एक निरर्थक व्यक्ति बनने के कगार पर थे।'

आँधी में सूखे पत्ते के समान गुडविन लक्ष्यविहीन और दिशाविहीन होकर जीवन यापन कर रहे थे। उनका जीवन निराधार अस्तित्व का हो गया था। १८९३ में चौदह वर्ष की आयु में उन्होंने इंग्लैंड के बाथ में पत्रकार के रूप में कार्य किया, किन्तु पत्रकारिता के कार्य में वे असफल रहे। बाथ से ऑस्ट्रेलिया और बाद में अमेरिका में वे अपना भाग्य परखने के लिए गए। अपना गुजारा चलाने के लिए वे पर्याप्त सम्पादन कार्य कर लेते थे। पच्चीस वर्ष तक की आयु में गुडविन तीन समाचारपत्रों का सम्पादन कर चुके थे और न्यायालयीन संवाददाता के रूप में भी उन्होंने कार्य किया था।

किन्तु फिर भी वे असन्तुष्ट थे। केवल आजीविका से ही उन्हें शान्ति प्राप्त नहीं हो रही थी। सामान्य जीवन-यापन से वे बहुत ऊब गए थे। वे अन्य ओछे कार्यों में सुखप्राप्ति ढूँढ़ने लगे, किन्तु इससे उनके हृदय की उद्विग्नता और अधिक बढ़ने लगी। स्वामी विवेकानन्द के भ्राता महेन्द्रनाथ दत्त लिखते हैं कि गुडविन ने एकबार स्वामी सारदानन्दजी से कहा था, "ऑस्ट्रेलिया से जहाज में कोलम्बो आते समय मेरे पास कोई भी काम नहीं था। मैं समय कैसे व्यतीत करता? इसलिए मैंने नृत्य करना शुरू किया। लगभग आधी रात तक मैं नृत्य करता था। ताश और जुआ भी खेला और काफी पैसे गँवाए।

जब गुडविन ने न्यूयॉर्क के समाचारपत्रों में छपे उस विज्ञापन के लिए आवेदन भरा, तब वे केवल वेतन ही नहीं, बल्कि कुछ और भी प्राप्त करना चाहते थे। जो सद्गुण गुडविन को विरासत में प्राप्त हुए थे, वे मानो उनके मन के उपरी स्तर पर छुपे थे और अभिव्यक्ति के लिए केवल एक उत्प्रेरक की प्रतीक्षा में थे।

वे उत्प्रेरक स्वामी विवेकानन्द थे और उनका प्रभाव अविलम्ब और गहन था। स्वामीजी की अंग्रेजी जीवनी में वर्णन प्राप्त होता है, "...यद्यपि गुडविन संसार में लिप्त और मिश्रित अनुभवों से गुजरे थे, किन्तु जिस क्षण उनकी दृष्टि स्वामीजी पर गई और वे उनके सम्पर्क में आए, उन्होंने अपना सांसारिक जीवन और समस्त भोग त्याग दिए। स्वामीजी ने गुडविन के अतीत की अनेक घटनाएँ उन्हें बताईं। उनके विचारों में ऐसी नैतिक क्रान्ति आई कि उनका समस्त जीवन बदल गया।

ऐसा नहीं समझना चाहिए कि स्वामीजी की गुडविन के अतीत को जानने की शक्ति से ही गुडविन के जीवन में परिवर्तन सम्भव हुआ, किन्तु इसके मूल में स्वामीजी का स्वयं का व्यक्तित्व था। इस विषय में गुडविन ने स्वामी सारदानन्द जी से कहा था, "मैंने लगभग सभी अंग्रेजी भाषा वाले स्थानों में भ्रमण किया। मैं और क्या करता? बचपन गरीबी में पला-बढ़ा और तभी से रोजी-रोटी के लिए प्रयत्न करने लगा। मेरा कोई आश्रयदाता नहीं था। बहुत से स्थानों में गया और बहुत लोगों से मिला। तब अमेरिका में मेरी भेंट स्वामी विवेकानन्द से हुई। तभी मुझे समझ में आया कि प्रेम क्या होता है। चाहे वेतन मिले

या न मिले, मैं उनके पाश में बँन्ध चुका था। मैंने पूरे विश्व का भ्रमण किया, विख्यात लोगों से मित्रता की, किन्तु कहीं भी मुझे स्वामी विवेकानन्द जैसा महान व्यक्तित्व नहीं मिला, मानो कोई अपने बहुत करीबी की ओर आकृष्ट होता हो।

आश्चर्य की बात है कि अत्यन्त अल्प समय में ही गुडविन एक कर्मचारी से समर्पित सेवक के रूप में परिणत हुए। एक ऐसे सेवक जो अपने शरीर, मन और प्राण को स्वामीजी और उनके कार्यों में उत्सर्ग करने वाले थे।

'समर्पित सेवक' का अर्थ यह नहीं समझ लेना चाहिए कि गुडविन अवैतनिक सेवक के रूप में थे। इसे ठीक समझ लेना चाहिए, क्योंकि ऐसा बहुधा उल्लिखित किया गया था कि गुडविन ने अपना पारिश्रमिक लेना अस्वीकार कर दिया था। गुडविन की अपनी प्रबल अनिच्छा के बावजूद भी उन्हें वेतन लेना पड़ा था। उनके जीवन-यापन के लिए यह आवश्यक था। गुडविन ने इस विषय में ओली बुल को लिखा था, ''यदि मुझे वेदान्त के लिए कार्य करना है और मेरी इच्छाएँ भी यदि उसी कार्य के अनुरूप हैं, तो मैं यह कह सकता हूँ कि मेरा सम्पूर्ण हृदय इस कार्य में है। विवश होकर मुझे जीवन-यापन के लिए अत्यल्प वेतन ग्रहण करना होगा, किन्तु उसके अतिरिक्त मैं अन्य किसी भी व्यवस्था को स्वीकार नहीं करूँगा।'' इसी आशय से सम्बन्धित गुडविन ने श्रीमती मैरी फिलिप्स को लिखा था, ''मैं एक गरीब मनुष्य हूँ। वेदान्त कार्य में अपने योगदान हेतु मेरी (वेतन ग्रहण करने की) इच्छा नहीं थी, किन्तु मुझे यह करना पड़ रहा है और मैं इसके लिए लज्जित नहीं हूँ। न्यूयार्क में अपने कार्य के लिए मुझे वेतन ग्रहण करना पड़ा था।''

गुडविन को और कुछ नहीं, तो कम-से-कम अपने कमरे का किराया चुकाने के लिए अल्प आजीविका की आवश्यकता थी। स्वामीजी और कृपानन्द जिस दो-कमरे वाले किराये के भवन में थे, गुडविन ने उसी के सामने वाले मार्ग पर किराये का कमरा लिया था। गुडविन के लिए वहाँ जाना सुविधाजनक था, क्योंकि स्वामीजी के व्याख्यानों को सुनना और उन्हें टाईप करना, इस बीच अन्य किसी काम के लिए उन्हें शायद ही समय मिलता था। गुडविन के कार्य करने की शक्ति और निष्ठा विलक्षण थी। उनकी सेवा केवल स्टेनोग्राफी तक ही सीमित नहीं थी। कुछ ही समय में गुडविन स्वामीजी के लिए सब कुछ करने लगे थे। किन्तु इसके कारण वे कृपानन्द के अप्रिय बन गए (कृपानन्द उन्हें पहले 'द शॉर्टहैन्ड मैन' कहकर ही उनका उल्लेख करते थे)। लाईफ ऑफ स्वामी विवेकानन्द में गुडविन के बारे में लिखा गया है, ''...अनन्य निष्ठावान शिष्य, जो स्वामीजी के व्यक्तिगत आवश्यकताओं तक की देखरेख करते थे। स्वामीजी के व्याख्यानों को स्टेनोग्राफी में लिखना, उन्हें समाचारपत्रों में प्रकाशित करने के लिए उसी दिन टाईप करना और अगले दिन इसी कार्य के लिए पुन: तैयार रहना – इस प्रकार दिन-रात गुडविन स्वामीजी के व्याख्यानों पर काम करते थे।''

स्वामीजी के व्याख्यानों का कार्यक्रम बड़ा ही दुष्कर था। ९ दिसम्बर से २३ दिसम्बर तक स्वामीजी ने सप्ताह में चार दिन और प्रति चार दिन दो बार व्याख्यान दिए। उन्होंने इस समय कम-से-कम २० अथवा उससे भी अधिक व्याख्यान दिए थे। रविवार को प्रश्नोत्तर सत्र रहता था। सुबह-शाम दोनों समय पाठवर्ग रहते थे। सुबह का वर्ग 'उच्चतर' शिष्यों के लिए और शाम के व्याख्यान प्रस्तावनारूप रहते थे। इस समय स्वामीजी ने मद्रास में आलासिंगा पेरुमल को लिखा था, ''तुम्हें इस बात का हमेशा ध्यान रहे कि मुझे कितना कार्य करना पड़ता है। कभी-कभी मुझे एक ही दिन में दो या तीन व्याख्यान देने पड़ते हैं...अन्य कोई दुर्बल व्यक्ति मर ही जाता।''

सचमुच, ऐसा लगता है कि स्वामीजी इन व्याख्यानों में जितना अधिक सम्भव हो सके, उतना सारतत्त्व ढालते जा रहे थे। इन्हीं कुछ महीनों में स्वामीजी ने जो व्याख्यान दिए, वे ही आगे चलकर उनकी महत्त्वपूर्ण पुस्तकें – कर्मयोग, भक्तियोग और राजयोग की सामग्री बनें। स्वामीजी ने कहा था कि ये पुस्तकें, 'जब मैं नहीं रहूँगा, कार्य का आधारस्वरूप पाठ्य-पुस्तकें होंगी।'

१८९६ के वर्ष को अनेक दृष्टि से स्वामीजी के पाश्चात्य कार्य का सर्वोत्कृष्ट समय कहा जा सकता है। सचमुच में यह वर्ष स्वामीजी के उपदेशों के प्रचार-प्रसार में अत्यन्त लाभप्रद हुआ। १८९५ के अन्त में स्वामीजी ने स्वामी ब्रह्मानन्द जी को लिखा था, ''इस वर्ष इतना कार्य होने वाला है कि उसे सुनकर तुम आश्चर्यचकित हो जाओगे।'' दिसम्बर, १८९५ के मध्य से दिसम्बर, १८९६ तक गुडविन ने स्वामीजी के लगभग सभी पाठवर्ग और व्याख्यानों को लिखा और बाद में उसे टाईप किया। गुडविन जितने अल्प समय के लिए स्वामीजी के साथ थे, उनका विशिष्ट कार्य स्वामीजी के उस सन्देश को लिपिबद्ध करना था, जिसका प्रसार स्वामीजी पूरे विश्व में करना चाहते थे। स्वामीजी ने उद्घोषणा की थी कि जिस प्रकार भगवान बुद्ध का प्राच्य के लिए सन्देश था, उसी प्रकार उनका पाश्चात्य के लिए सन्देश है। गुडविन स्वामीजी के उस सन्देश के लिपिक थे। जिस प्रकार मनुष्य जाति में श्रीरामकृष्ण देव के सन्देश के प्रसार के लिए श्री म थे, उसी प्रकार स्वामी विवेकानन्द के सन्देश का प्रसार उनके निष्ठावान गुडविन ने किया था। **(क्रमश:)**

युवा-चेतना के प्रवर्तक स्वामी विवेकानन्द

सम्पादक – डॉ. ओमप्रकाश वर्मा
प्रकाशक –छत्तीसगढ़ राज्य हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, सामुदायिक भवन के सामने, पं.रविशंकर विश्वविद्यालय परिसर, रायपुर – ४९२०१० (छत्तीसगढ़)
पृष्ठ-४२२, मूल्य – १८०/-

एकैकोऽपि समुच्छ्वासः परार्थं यस्य निःसृतः।
विवेकानन्द इत्याख्यः चैतन्यस्य प्रवर्तकः।।
नरं नारायणं मत्वा सेव्यतामिति योऽवदत्।
चारित्र्यकीर्तनात्तस्य ग्रन्थोऽयं शोभते खलु।।

– जिनका एक-एक उच्छ्वास परोपकार के लिये था, ऐसे स्वामी विवेकानन्द चैतन्य के प्रवर्तक हैं। जिन्होंने यह शिक्षा दी कि नर को नारायण मानकर सेवा करनी चाहिए, उस युगनायक के चरित्र गुणगान से यह ग्रन्थ सचमुच शोभनीय है।

ईश्वरीय अवतरण किसी प्रयोजन विशेष से फलीभूत होता है। जैसाकि परमहंस श्रीरामकृष्ण देव ने अपनी अनुभूति के वर्णन में स्वयं बतलाया था कि उनके अनुरोधवश सप्तर्षियों में एक नरेन्द्र के रूप में अवतीर्ण हुए। स्वामीजी ने जागतिक जीवन में अपने गुरु की इच्छाओं के अनुरूप अपनी जीवनचर्या से चरितार्थ करते हुए विश्व के समक्ष धर्म के यथार्थ और व्यावहारिक स्वरूप का आचरणीय आदर्श प्रस्तुत किया। लगभग चालीस वर्षों के अल्पजीवन में ही स्वामी विवेकानन्द ने एक सूर्य के समान प्रकट होकर अपने विचार-रश्मिपुंज का प्रसार कर भारत सहित समग्र विश्व को यथेष्ट अभ्युदय का पथ-प्रदर्शन किया। इस प्रकार विविध क्षेत्रों में सम्पन्न स्वामीजी के अद्भुत कार्यों और विचारों को एकत्र संकलित कलेवर का स्वरूप प्रदान करने का सराहनीय प्रयास है – छत्तीसगढ़ राज्य हिन्दी अकादमी, रायपुर द्वारा प्रकाशित यह ग्रन्थ 'युवा-चेतना के प्रवर्तक : स्वामी विवेकानन्द'।

ग्रन्थ के शीर्षक से ऐसा प्रतीत होता है कि कदाचित् स्वामीजी यहाँ केवल युवा-वर्ग के चेतना-प्रवर्तक के रूप में प्रतिपाद्य हों, परन्तु अनुशीलन से स्पष्ट होता है कि वे किसी भी अवस्था के पाठक में युवा जैसी चेतना के प्रवर्तन में समर्थ मनुष्य-निर्माता के नायक के रूप में वर्णित हैं।

प्रारम्भ में ही शिक्षामन्त्री श्री प्रेमप्रकाश पाण्डेय द्वारा लिखित संस्तुति उनके संस्कृति प्रेम को दर्शाती है। ग्रन्थ के सम्पादक डॉ. ओमप्रकाश वर्मा, जो विवेकानन्द विद्यापीठ, कोटा, रायपुर के सचिव और पं. रविशंकर विश्वविद्यालय, रायपुर में विवेकानन्द चेयर प्रोफेसर और विवेकानन्द को ही समर्पित हैं, उन्होंने बड़े मनोयोग से रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर से प्रकाशित विवेक-ज्योति के अधिकांश आलेख-पुष्पों से इस ग्रन्थ-माला को अभिरामता प्रदान की है और ग्रन्थ के आदि-अन्त में छत्तीसगढ़ के स्वामी विवेकानन्द माने जानेवाले स्वामी आत्मानन्द के आलेख-कुसुममन्त्रों से मानो ग्रन्थ को सम्पुटित कर दिया है। इस महान कार्य हेतु डॉ. वर्मा श्लाघनीय हैं, प्रशंसनीय हैं।

यद्यपि स्वामी विवेकानन्द के लोकोत्तर व्यक्तित्व से सम्मोहित होकर देशी-विदेशी मनीषियों ने इन पर अब तक सैकड़ों पुस्तकें लिखी हैं, तथापि १४ वर्षीय स्वामीजी के रायपुर में द्विवर्षीय प्रवास, पितृ साहचर्य में उनके किशोर व्यक्तित्व के उन्नयन तथा रायपुर-यात्रा में उनकी प्रथम भाव-समाधि की उपलब्धि का वर्णन करता (स्वामी आत्मानन्द द्वारा लिखित आलेख 'स्वामी विवेकानन्द और रायपुर') यह ग्रन्थ एक नवीन पक्ष के उद्घाटन से सर्वथा महत्त्वपूर्ण बन गया है।

११ सितम्बर, २०१७ को विज्ञान भवन, नई दिल्ली में आयोजित छात्र-सम्मेलन में भारत के प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी के प्रस्तुत वक्तव्य का सम्पादित संकलन (युवा भारत को स्वामी विवेकानन्द का सन्देश) ग्रन्थ को संग्रहणीय श्रेणी प्रदान करता है।

१२ जनवरी, २०१८ को राष्ट्रीय युवा दिवस (स्वामी विवेकानन्द जयन्ती) के पवित्र अवसर पर प्रकाशित इस ग्रंथ में कुल ४२ आलेखों का संकलन है। स्वामीजी विश्वबन्धुत्व के पोषक थे, परन्तु राष्ट्रप्रेम के प्रबल पक्षधर थे। उनमें सभी धर्मों के प्रति आदर-भाव था, पर अपने हिन्दुत्व (धर्म) पर गर्व था, यूरोप की भौतिकता और विज्ञान को अपनाकर भारत को सम्पन्न बनाने की योजना थी, पर आध्यात्मिकता की भारतीय सम्पदा से समूचे विश्व को आन्तरिक शान्ति देने का मनोरथ भी था। स्वामीजी भारतीय नारियों में सीता, सावित्री के आदर्श चरित्र देखना चाहते थे, पर साथ ही उन्हें शिक्षित और सबल बनाकर राष्ट्रीय विकास के आकांक्षी थे। उनका सबसे बड़ा वेदान्त का व्यावहारिक व्रत नर-नारायण की सेवा है। इस प्रकार स्वामी विवेकानन्द के बहुविषयक विचारों को संकलित आलेखों में समाविष्ट करता यह ग्रंथ निश्चय ही उपादेय है। ऐसे महान ग्रन्थ के प्रकाशक छत्तीसगढ़ राज्य हिन्दी ग्रन्थ अकादमी के अध्यक्ष श्री शशिशेखर जी धन्यवाद के पात्र हैं। ○○○

– समीक्षक - डॉ. सत्येन्दु शर्मा, रायपुर

समाचार और सूचनाएँ

रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम, मुजफ्फरपुर में दो चरणों में राष्ट्रीय युवा दिवस मनाया गया। प्रथम चरण में नवम्बर-दिसम्बर, २०१७ में स्कूल-कॉलेजों में विभिन्न भाषण, कहानी, पाठावृत्ति, निबन्ध, वाद-विवाद, चित्रकला, रंगोली, प्रश्नोत्तरी, एकल और समूह गीति आदि की प्रतियोगितायें कराई गयीं, जिसमें ५० शिक्षा संस्थानों के ५१४८ विद्यार्थियों ने भाग लिया। द्वितीय चरण में १२ जनवरी, २०१८ को प्रथम, द्वितीय, तृतीय स्थान प्राप्त २६१ प्रतिभागियों को पुरस्कार दिया गया। इसमें आश्रम के सचिव स्वामी भावात्मानन्द, बी. एन. मंडल विश्वविद्यालय के पूर्व कुलपति प्रो. रिपुसूदन प्रसाद श्रीवास्तव, बी. आर. ए. बिहार विश्वविद्यालय के कुलपति प्रो. अमरेन्द्र नारायण यादव आदि ने व्याख्यान दिए।

रायपुर में गुरु घासीदास जयन्ती मनाई गई

विवेकानन्द विद्यापीठ, रामकृष्ण परमहंस नगर, कोटा, रायपुर में १८ दिसम्बर, २०१७ को छत्तीसगढ़ के महान सन्त गुरु घासीदास महाराज की जयन्ती सोल्लास मनाई गयी। इस उपलक्ष्य में एक सभा का आयोजन प्रात: १० बजे किया गया। अतिथियों द्वारा दीप-प्रज्वलन के बाद छात्रों ने डॉ. नरेन्द्र कुमार वर्मा रचित 'जय हो छत्तीसगढ़ मैया' और 'आये हौं सरन' नामक गीत गाये। सभा के मुख्य अतिथि पं. रविशंकर विश्वविद्यालय के अर्थशास्त्र अध्ययनशाला विभाग के प्रोफेसर डॉ. रवीन्द्र ब्रह्मे ने छात्रों को गुरु घासीदास जी के नैतिक मूल्यों से अवगत कराया। सभा के विशिष्ट अतिथि और उसी विश्वविद्यालय और विभाग के डॉ. बी. एल. सोनकर जी ने कहा कि जयन्ती की सार्थकता आदर्शों को जीवन में अपनाने में है। सभा की अध्यक्षता कर रहे रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के स्वामी प्रपत्त्यानन्द जी ने कहा कि छात्र को अध्ययनकाल में सुख-सुविधा की ओर ध्यान न देकर शिक्षा-ग्रहण करने में मन को एकाग्र करना चाहिये। गुरु घासीदास के उपदेश – गुरु की आज्ञा का पालन, उनमें विश्वास और सबके प्रति बन्धुभावना को अपनाना चाहिये, तभी उनके सच्चरित्र का निर्माण होगा। अधिकारों के लिये संघर्ष न कर, कर्तव्य-पालन पर ध्यान दें, तो अधिकार स्वयं मिलते हैं। विवेकानन्द विद्यापीठ के सचिव डॉ. ओमप्रकाश वर्मा ने गुरु घासीदास जी के जीवन पर विस्तृत प्रकाश डाला। उन्होंने कहा कि गुरु घासीदास भारतीय नव जागरण के पुरोधा थे। वे कोई दार्शनिक नहीं थे, सामान्य थे, किन्तु जीवन में सत्य की साधना का संघर्ष किया और उसे प्राप्त किया। उन्होंने सोनाखान की पहाड़ी में ध्यान कर ज्ञान की प्राप्ति की और जन समाज में सतनाम का प्रचार किया। विद्यापीठ के छात्रों ने सुन्दर गुरु घासीधास जी की आरती 'आरती होते सतनाम पुरुष के' प्रस्तुत की। धन्यवाद ज्ञापन वहाँ के प्राचार्य श्री एच. डी. प्रसाद जी ने किया। बच्चों ने पन्थी नृत्य किया। मंच संचालन दिनेश सोनवानी ने किया।

२२ जनवरी, २०१८ को विवेकानन्द विद्यापीठ, कोटा रायपुर में सरस्वती पूजा मनाई गयी, जिसमें रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के स्वामी अव्ययात्मानन्द, स्वामी प्रपत्त्यानन्द, वहाँ के सचिव डॉ. ओमप्रकाश वर्मा और पं. सुन्दरलाल शर्मा (मुक्त) विश्वविद्यालय के कुलपति डॉ. वंश गोपाल सिंह ने व्याख्यान दिये। टी. हेमन्तराव का विद्यारम्भ संस्कार हुआ। बच्चों ने माँ सरस्वती के भजन गाये। वहाँ के प्रतिभाशाली दो छात्रों आकाश और नितीन कुमार को पुरस्कार भी दिया गया।

रामकृष्ण सेवा समिति, बिलासपुर में दिसम्बर, २०१७ को स्वामी सत्यरूपानन्द जी ने कम्बल का वितरण और भक्तों के साथ सत्संग किया । १ जनवरी को कल्पतरु दिवस मनाया गया, जिसमें रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के स्वामी अव्ययात्मानन्द और स्वमी प्रपत्त्यानन्द ने व्याख्यान दिया।

रामकृष्ण मिशन आश्रम, सेलम में भगिनी निवेदिता की १५०वीं जन्म-जयन्ती के उपलक्ष्य में ५ जनवरी, २०१८ को रामकृष्ण मठ-मिशन के सह-महासचिव स्वामी तत्त्वविदानन्द जी ने भगिनी निवेदिता की मूर्ति का अनावरण किया। विवेक वाणी के सम्पादक श्री एन. कृष्णमूर्ति और डॉ. वी. इरैनबो (आई. ए. एस) और सचिव स्वामी यतात्मानन्द जी ने व्याख्यान द्वारा छात्रों को सम्बोधित किया । OOO